ISSN 2581- 4133

वर्ष : 16 • अंक : 11 • पृष्ठ : 44 • जयपुर
www.shaikshikmanthan.com

ज्येष्ठ, विक्रम संवत् 2081
1 जून 2024 • ₹ 25/-

शैक्षिक मंथन

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

भारत की विशिष्ट कुटुम्ब परम्परा

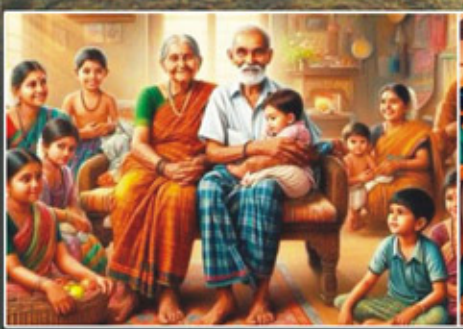

शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 16 अंक : 11 1 जून 2024

ज्येष्ठ, विक्रम संवत् 2081

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

जगदीश प्रसाद सिंघल

शिवानन्द सिन्दनकेरा

जी. लक्ष्मण

महेन्द्र कुमार

❖

सम्पादक

प्रो. शिवशरण कौशिक

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

प्रो. राजेश कुमार जांगिड़

प्रो. ओमप्रकाश पारीक

डॉ. एस.पी. सिंह

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बसंत जिंदल

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-

दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

परिवार व पारिवारिक प्रसन्नता के सूत्र ❑ प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा

परिवार व कुटुम्ब के सभी सदस्यों के बीच ये सारे व्यवहार यंत्रवत या मात्र दिखावे के लिए अथवा केवल अपना प्रभुत्व स्थापना के भाव से न होकर, स्नेह व आत्मीयतापूर्वक किये जाने चाहिए। यह आत्मीयता, स्नेह व परस्पर सम्मानजनक सम्बन्ध बाल्यकाल से ही सृजित किये जाने आवश्यक हैं। परिवारों में एक भावात्मक एकता लाने हेतु भावात्मक बुद्धिमत्ता अर्थात् इमोशनल इण्टेलिजेन्स का विकास भी परम आवश्यक है। परिवार में सब लोग परस्पर एक दूसरे की भावनाओं को समझे व उनका परस्पर आदर करें, इस हेतु भावनात्मक प्रज्ञा का विकास आवश्यक है।

4

अनुक्रम

3.	संपादकीय	- प्रो. शिवशरण कौशिक
10.	कुटुम्ब से वसुधैव कुटुम्बकम् तक	- हनुमान सिंह राठौड़
13.	आर्षग्रंथ और कुटुम्ब प्रबोधन	- प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
17.	पारस्परिक निष्ठा से बनता है परिवार	- शास्त्री कोसलेन्द्रदास
21.	संयुक्त परिवार की व्यवस्था और इतिहास	- डॉ. संजय सिंह पठानिया
24.	भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप	- दीपक कुमार अवस्थी
27.	भारतीय समाज की परिवार व्यवस्था में परिवर्तन...	- डॉ. कविता
29.	कुटुम्ब व्यवस्था और संस्कार	- अलका शर्मा
33.	Family and Society	- Dr. G.V. Snigdha Raj
35.	India's Unique Family Tradition	- Dr. Surinder Kumar
37.	Bharateeya Family Values : Then and Now	- Shivkumar M. Belli
40.	Allowing Students to Write in Hindi ...	- Dr. Bharat Khushalani
42.	उन्नत भारत और राष्ट्रीय शिक्षा नीति	- रमेशचन्द्र पाटीदार

'Resilience' of the Indian Family System in the Era of Decay

❑ **Dr. Anil Kumar Biswas**

Our holy book the 'Ramayana' details how people were happy, peaceful, free, and resilient and enjoyed freedom in 'Ram Rajya'. People enjoyed a complete life under good governance provided by King Sri Ram Chandra; which he learned from his family. The 'Mahabharata' can also teach us the importance of values and resilience of the family system. The 'Vedas' detail the various marriage systems of Hindu communities; which is the base of the Indian family system and teaches us the resilience of the then family.

30

संपादकीय

प्रो. शिवशरण कौशिक
संपादक

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।।

हिंदी के प्रसिद्ध कवि, कथाकार एवं नाटककार जयशंकर प्रसाद ने भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सनातन अवधारणा को इस संबोधन गीत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है जिसमें वे भारत की माधुरिम जीवनी-संस्कृति के विभिन्न लक्षणों का उल्लेख करते हैं और कहते हैं कि भारतवासियों का हृदय सदैव अपनत्व, बंधुता, प्रेम और सदाशयता से भरा रहा है। इसीलिए उन्होंने भारत को 'मधुमय देश' कहकर संबोधित किया है। शरणागत-वत्सलता और आश्रयदाता भाव ने भारतवासियों को सदैव निरापद रूप से भावुक तथा करुणार्द्र बनाए रखा। भारत की श्रम-संस्कृति तथा कृषि-संस्कृति ने इस बंधुता और भ्रातृभाव को और अधिक समृद्ध करते हुए समाज के विकास में मंगल-कुंकुम फैलाया। यह अवश्य है कि अनेक विदेशी समुदायों ने भारत के इस आतिथ्यभाव का अनादर तथा दुरुपयोग करते हुए इस पर अपनी साम्राज्यवादी नीतियाँ थोपकर भारतीय समाज की इस भावना को आहत किया। यह भी सत्य है कि भारतीय समाज की समूची उत्सवधर्मिता संयुक्त परिवार-प्रथा से ही प्राण-तत्त्व ग्रहण करती है।

पिछली सदी से ही भारत और विश्व के अनेक देश आधुनिकता और वैज्ञानिक विकास के वाहक बने हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों में नए-नए आविष्कार और नए-नए साधनों की उत्पत्ति हुई है जिसने समाज-जीवन के अनेक मानदंड प्रभावी रूप से परिवर्तित कर दिए हैं। इनमें सबसे प्रमुख भारतीय परिवार व्यवस्था के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन का होना है। व्यक्ति स्वातंत्र्य और आर्थिक-चेतना ने एकल परिवारों की संख्या में तेजी से वृद्धि की है और भारत की कुटुम्ब-व्यवस्था उल्लेखनीय रूप से अस्त-व्यस्त हुई है। यह युग व्यक्ति को अत्यधिक उपभोग की वस्तुओं की ओर आकर्षित करने वाला और उसे अधिकाधिक सुविधाओं का भोग करने वाला महत्त्वाकाँक्षी व्यक्ति बनाता है। यह अलग बात है कि तेजी से बढ़ने वाले इन एकल परिवारों (जिनमें माता-पिता और उनके एक या दो बच्चे) के सदस्य आज अत्यधिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझ रहे हैं। तनाव, अजनबीपन, एकाकीपन, उदासी, असुरक्षा, किशोर अपराध, स्वास्थ्य संरक्षण का अभाव, अवसाद, भावनात्मक सहयोग का अभाव, बाल अपचारी, वृद्धावस्था समस्या, विवाह विच्छेद जैसी समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। तथाकथित आर्थिक रूप से समृद्ध इन एकल परिवारों में बच्चों के समुचित लालन पालन की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। माता-पिता दोनों के कामकाजी होने के कारण बच्चों को पालना गृह में और स्वयं के माता-पिता को वृद्धाश्रम में भेजे जाने की अनेक हृदय विदारक घटनाएँ भी हमें प्रतिदिन देखने-सुनने को मिलती हैं। चिन्ता का विषय यह है कि ये सारी स्थितियाँ उन परिवारों में देखने को मिल रही हैं जो मध्यवर्गीय नवधनाढ्यों की श्रेणी में आते हैं।

इसके विपरीत भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था में माता-पिता के साथ दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाचा, भैया-भाभी तथा इन सबके बच्चे एक आवास-इकाई के रूप में एक ही स्थान पर निवास करते रहे हैं। प्रत्येक सदस्य को आवास, भोजन, वस्त्र, सुरक्षा, चिकित्सा तथा सामान्य देखभाल की सामूहिक व्यवस्था स्वत: ही प्राप्त हो जाती थी। एक दूसरे को इसके लिए कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। परिवार से ही नई पीढ़ी का समाजीकरण आरंभ होता है, बच्चों को संयुक्त परिवार में अपने से बड़ों के द्वारा नैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिष्करण का अनुकूलतम वातावरण मिलता है। हाँ यह अवश्य है कि यदि कोई परिवार पूर्व-स्थिति में ही इन सभी जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षरत है अर्थात् कोई एक या एकाधिक सदस्य परिवार की मर्यादाओं को लांघ कर कुछ अनैतिक या असामाजिक कृत्य करते हैं तो वे भावी पीढ़ी के लिए भी परिवार के विपरीत कृत्य करने का मार्ग आसानी से पा लेते हैं।

संयुक्त परिवार में कार्यों का वितरण भी सम्यक और संतुलित रूप से रहता है। नि:सन्तान, कम संतान या अधिक संतान की समस्या का भी संतुलित समाधान परिवार में ही दत्तक व्यवस्था के आधार पर रहता है। एक निश्चित आयु-वर्ग के बालकों की देखभाल माता-पिता या परिवार के ही किन्हीं अन्य सदस्य की उपस्थिति में होता रहता है और यही वातावरण उस बालक के भावनात्मक विकास का मुख्य आधार बनता है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकारों की जनसंख्या नीति के कारण परिवार में बच्चों की निश्चित संख्या के निर्धारण ने भी एकल परिवार की अवधारणा को बढ़ावा दिया। संविधान के अनुच्छेद 47 (अ) में प्रस्ताव किया गया कि यदि किसी दंपती के केवल दो बच्चे होंगे तो उसको कर, रोजगार, शिक्षा आदि में रियायत के साथ विभिन्न क्षेत्रों में प्रोत्साहित किया जाएगा। सन् 1952 में भी तत्कालीन सरकार ने एक व्यापक परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया था जिसमें दो बच्चों से अधिक माता-पिता सरकारी नौकरी से बाधित किए गए थे। 1970 और 1979 में इसी अभियान को दमनकारी रूप से लागू किया गया और विडम्बना है कि इस सरकारी निर्णय की क्रियान्विति में धार्मिक आधार पर भेदभाव भी किया गया।

वर्षों तक जनसंख्या की दृष्टि से भारत के नागरिकों को मानव संसाधन कहकर व्यक्तियों व नागरिकों की गरिमा को समुचित सम्मान से वंचित किया। भारत सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले मंत्रालय का नाम ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय चलता रहा जिसे विगत वर्षों में वर्तमान भारत सरकार द्वारा बदलकर सन् 2020 में शिक्षा मंत्रालय किया गया है। ❑

सम्माननीय सदस्यगण !

शैक्षिक मंथन के जिन सदस्यों की दस वर्षीय सदस्यता पूर्ण हो चुकी है, वे नियमित अंक प्राप्ति हेतु कृपया शीघ्र ही नवीनीकरण करवाने का अनुग्रह करें।

परिवार व पारिवारिक प्रसन्नता के सूत्र

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा
अध्यक्ष,
यूनेस्को द्वारा संचालित
महात्मा गाँधी शांति एवं
विकास संस्थान

परिवार हमारी सांस्कृतिक विरासत का सर्वाधिक अनमोल उपहार है। परिवार ही हमारी सर्वांगीण उन्नति का आधार भी है। परिवार में जो परस्पर सहयोग, सहायता व सहानुभूति का वातावरण रहता है, वही परिवार के प्रत्येक सदस्य की शक्ति का स्रोत भी होता है। हमारे पारिवारिक जीवन की अनगिनत सुमधुर स्मृतियाँ, हमें आजन्म प्रेरणा देती हैं । हमारी विविध जानकारियों, व्यक्तिगत व सामाजिक अनुभवों, संस्कारों, जीवन मूल्यों, सामर्थ्य एवं शक्ति का स्रोत भी हमारा परिवार ही है। परिवार – जीवन के ये सभी अजस्र अनुदान हमें जीवन भर प्राप्त होते रहें व उनमें वृद्धि होती रहे, इस हेतु हमारा भी सबसे पावन कर्तव्य अपने परिवार व कुटुम्ब को सर्वोच्च प्राथमिकता देना है। परिवार में हमारी पारस्परिक सुरक्षा का आधार भी हमारा पारस्परिक सहयोग है। कोई व्यक्ति जन्म से ही कितना भी नि:शक्त व अयोग्य हो, उसका परिवार उसके योगक्षेम की सदैव ही पूरी चिन्ता करता है। जन्म के बाद भी, कभी भी जीवन में कोई भी अयोग्यता आ जाये, तब भी परिवार या कुटुम्ब ही व्यक्ति का साथ देता है। किसी व्यक्ति में कितनी ही कमियाँ व दुर्गुण हों, उसका परिवार उसका कभी परित्याग नहीं करता है, वरन हर संकट से उबारने में उसका सहयोग करता है। हम अपने जीवन में सतत अनुभव करते हैं कि, जीवन में आगे बढ़ने व जीवन को निष्कंटक बनाने में सर्वाधिक नि:स्वार्थ सहयोग, हमें अपने परिवारजनों से ही प्राप्त होता है। सामान्यत: कुटुम्बी जन व परिवारजन, बिना किसी स्वार्थ या प्रतिलाभ की अपेक्षा के, हमें सब प्रकार का सहयोग प्रदान करते हैं। लेकिन यह सब पारस्परिक परिवार भाव से ही संभव होता है।

परिवार : सर्वोपरि तपस्थली

इसीलिए वेदों, विशेषत: ऋग्वेद व अथर्ववेद में कहा है कि परिवार, प्रत्येक गृहस्थ के लिये सर्वोपरि तपस्थली अर्थात् तपस्या का स्थान है, जहाँ व्यक्ति को त्याग, उत्सर्ग, सेवा, सहिष्णुता व धर्माचरण का सुअवसर प्राप्त होता है एवं वह उनसे पुण्य लाभ प्राप्त करता है। उसे अपने सभी परिजनों का प्रिय कार्य करने का सुअवसर प्राप्त होता है। इस तपस्थली में नारी सम्मान को सर्वोपरि कर्तव्य भी बतलाया गया है और उसके मातृत्व को पूज्य कहा है। व्यवहार में देखें तो परिवार में ही परिणय बन्धन में पवित्र दाम्पत्य जीवन का विकास होता है। परिवार में ही पुरुष को पितृत्व व स्त्री को मातृत्व का पवित्र पद व गौरव प्राप्त होता है। उन दोनों के वात्सल्य व ममता भरी निर्भयताकारी छाया में उनकी सन्तति स्वस्थ, संस्कारित व योग्यता-पूर्ण जीवन प्राप्त करती है। परिवार जीवन से ही बड़े-

बुजुर्गों के क्षेम, प्रसन्नता पारितोष व सेवा का उत्तम सम्बल प्राप्त होता है। परिवार में सभी कार्य व व्यवहार परस्पर कर्त्तव्य भावना से किये जाते हैं, जहाँ सभी सदस्य एक दूसरे के लिए कष्ट सहने, त्याग करने व सहयोग करने में ही अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करते हैं। त्याग व कर्त्तव्य रूपी अमृत-तत्त्व के बीज से ही भारत में स्वर्ग से भी श्रेष्ठ आनन्द का फल देने वाली परिवार रूपी बेल, अनादि काल से पल्लवित, पुष्पित व फलवती हो रही है। इसलिए, अपने परिवारों में हमको भी सदैव बिना किसी स्वार्थ व प्रतिलाभ की अपेक्षा के, सतत सबका सहयोग करना चाहिए। यह हम सबके जीवन में सर्वोपरि ध्येय होना चाहिए। हमारे सामाजिक जीवन में अनादि काल से सभी परिवारों में यह सर्वाधिक उदात्त परम्परा रही है। इसीलिए विवाह विच्छेद या तलाक, अनाथालय व वृद्धाश्रम का हिन्दू जीवन में कोई स्थान नहीं रहा है। हर व्यक्ति का कुटुम्ब उसके बाल्यकाल से मृत्यु पर्यन्त पूरे दायित्व के साथ उसके योगक्षेम की चिन्ता रखता था और हर संकट में सहयोग करता था। लेकिन, आज जीवन की स्पर्द्धा भरी दौड़ में अथवा अति महत्त्वाकाँक्षा के दबाव में हममें से कई लोग अपने परिवारजनों व कुटुम्बीजनों के प्रति न्यूनाधिक उपेक्षा का भाव भी दिखाने लगे हैं। कुछ लोग अपने तात्कालिक हित-अहित व संकुचित निजी स्वार्थ या प्रतिलाभ का आकलन कर अपने परिवार या कुटुम्ब में भी सहयोग-असहयोग का निर्णय व्यापारिक लेन-देन शैली में अनुपात तय करने की धृष्टता भी कर लेते हैं। यह सर्वथा अवांछित है।

पारिवारिक प्रफुल्लता : जीवन का ध्येय

परिवारों में हम सभी परिजन, जो साथ-साथ रहते हैं, उनमें अटूट पारस्परिक स्नेह व नि:स्वार्थ सहयोग का भाव होना ही आदर्श परिवार की पहचान है। अपने परिवार में सभी परिजनों के सुख व प्रसन्नता की चिन्ता करना, हमें अपना परम कर्त्तव्य मानना चाहिए। पशु-पक्षियों व कीट पतंगों तक में भी परस्पर सहयोग व समन्वय पाया जाता है। इसलिए, मनुष्य होने के नाते तो हमें अपने पूरे परिवार को सब प्रकार से खुश रखने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। परिवार में सौहार्द व सुख का संचार करने व संस्कारक्षम परिवेश निर्मित करने की दिशा में निम्न बातें हमें सदैव ध्यान में रखनी चाहिए -

1. परिवार की सफलता व उन्नति के लिए पारिवारिक भावना आवश्यक : परिवार में हमें दूसरों से पाने की अपेक्षा के स्थान पर बाँटने व शेष परिजनों की सहायता करने में अधिक सुख व आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए। परिवार में अपने जीवन-साथी, माता-पिता, बच्चों, भाई-बहनों आदि सभी को सुखी व संतुष्ट रखना परम आवश्यक व महत्त्वपूर्ण है। परस्पर एक दूसरे के लिये सुविधाएँ जुटाते रहने से परिवार में कभी निराशा का भाव नहीं आता है, वरन् उससे ही परस्पर सहयोग का भाव विकसित होता है। पारिवारिक जीवन में कलह, असंतोष, खिन्नता व उदासी का प्रमुख कारण परिजनों द्वारा एक दूसरे के हित में त्याग व सहयोग के स्थान पर दूसरों के सम्मुख स्वयं की माँग व अपेक्षाओं की पूर्ति का आग्रह व करते चले जाना व पूर्ति न होने पर दोषारोपण करते चले जाना है। इसके विपरीत, मेरे रहते परिवार व कुटुम्ब में किसी को कष्ट न हो, यह उदार भावना ही पारिवारिक भावना है। परिवार की प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा, परिवार के सुख में मेरा सुख, परिवार की प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा, परिवार के सुख में मेरा सुख, परिवार की उन्नति मेरी उन्नति है। यह अपनेपन की भावना ही पारिवारिकता की भावना है।

2. सजीव सम्पर्क व संवाद : आजकल निजता या व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर कभी-कभी परिवार के सभी या अधिकांश सदस्य, एक ही घर में रहते हुये भी अपना समय, अपने-अपने कक्ष में अकेले या एकाकीपन में ही बिताते हैं। सभी अपनी-अपनी दिनचर्या के अनुरूप अकेले

अलग-अलग, अपने-अपने समय पर अल्पाहार व भोजन करते हैं। अपने-अपने कक्ष में रहकर अकेले ही दूरदर्शन के कार्यक्रम देखते हैं। वहीं अपनी पसन्द की पुस्तकें या पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं। ऐसे में वे कहने को परिवार हैं, पर सभी अपने-आप में सिमटे रहते हैं। ऐसा एकाकीपन भी उचित नहीं है। हाँ, आवश्यक रूप से अकेले व जो काम एकाग्रता पूर्वक करने के हैं, उन्हें तो अपने-अपने कक्ष में अकेले सम्पन्न करना ही चाहिए। लेकिन थोड़ा समय, जितना भी अधिकतम सम्भव हो साझे में भी बिताना चाहिए। पारिवारिक समझ, परस्पर जुड़ाव और पारस्परिक सहकारिता का विकास तब भी सम्भव है। कम से कम एक अल्पाहार या एक समय का भोजन साथ करें तो अच्छा है। इसलिए, पूरे परिवार के सब सदस्य एक घर में एक साथ रहते हुये भी अपना समय जो केवल अपने-अपने कक्ष में एकाकी रूप में बिताते हैं, उसके स्थान पर, यदि अधिकतम सम्भव, जितना भी सम्भव हो, थोड़ा बहुत साथ-साथ व्यतीत करें, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन साझे पलों में भी हमें वहाँ एक दूसरे के साथ सहज, सरल, स्नेह व सौहार्दपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। एक दूसरे के साथ खुलकर मस्ती से बातचीत व विचार करें। आपस में अनुभव बाँटे, दिन भर के अनुभव परस्पर सुनायें, और हास-परिहास के साथ चुटकुले भी सुनाएँ। हँसे और हँसाएँ भी, आपका व पूरे परिवार का स्वास्थ्य व परस्पर सौहार्द अत्यन्त उत्तम रहेगा। यह सारा व्यवहार किसी प्रकार के अहंकार या बनावट अथवा छल रहित होना चाहिए।

3. अनुभव साझे करें व उल्लासमय वातावरण बनायें : केवल मिलकर साझा समय बिताना भी पर्याप्त नहीं है। एक साथ बैठ कर भी परस्पर न्यूनतम वार्तालाप कर सब अपने-अपने मोबाइल में व्यस्त हो जायें या नपे तुले शब्दों का आदान-प्रदान कर लें। यह पर्याप्त नहीं है। हर दिन व दिन में जब भी हम घर में एकत्र आयें सभी परस्पर सहज-सरलता व उल्लास के साथ बातें करें, एक दूसरे के अनुभव सुनें व सुनायें, खुल कर हँसे भी व हँसाये भी। एक दूसरे की प्रशंसा भी करें।

अपनी अनुभूतियाँ, अनुभव व आपबीती कहानियाँ एक दूसरों को सुनाएँ, खुशी वाली, शरारत वाली, उपलब्धि वाली और दु:ख वाली सभी साझी करें व सुनायें। परिवार में कुछ व्यक्तिगत या पर्सनल नहीं होता, इसलिए अपनी व्यक्तिगत या पर्सनल बातें भी साझी या शेयर कर सकते हैं और करनी चाहिए। बस ये सभी संस्कार का संवर्द्धन करने वाली होनी चाहिए। एक दूसरे को निरूत्तर करने या अमपानित करने का भाव नहीं होना चाहिए। घर के बच्चों की छोटी-छोटी अच्छाई की प्रशंसा करें, उन्हें स्नेह से गले भी लगायें, उनकी पीठ भी थपथपायें। ये अनुभूतियाँ उन्हें आजीवन याद रहती हैं। सप्ताह या माह में एक बार में बच्चे की प्रशंसा कर उसे गले लगायेंगे व पीठ थपथपायेंगे, यह अटूट स्नेह बन्धन का अतिसशक्त साधन है।

परिवार व कुटुम्ब के सभी सदस्यों के बीच ये सारे व्यवहार यंत्रवत या मात्र दिखावे के लिए अथवा केवल अपना प्रभुत्व स्थापना के भाव से न होकर, स्नेह व आत्मीयतापूर्वक किये जाने चाहिए। यह आत्मीयता, स्नेह व परस्पर सम्मानजनक सम्बन्ध बाल्यकाल से ही सृजित किये जाने आवश्यक हैं। परिवारों में एक भावात्मक एकता लाने हेतु भावात्मक बुद्धिमत्ता अर्थात् इमोशनल इण्टेलिजेन्स का विकास भी परम आवश्यक है। परिवार में सब लोग परस्पर एक दूसरे की भावनाओं को समझे व उनका परस्पर आदर करें, इस हेतु भावनात्मक प्रज्ञा का विकास आवश्यक है।

4. दिनचर्या में नियमित कुछ साझे कार्य : दिन भर में न्यूनतम एक भोजन साथ करें, अल्पाहार, दोपहर का भोजन या रात्रि का भोजन, जो भी सम्भव हो अवश्य करें। ऐसा कतई सम्भव नहीं हो तो सप्ताह में एक दिन भोजन, अल्पाहार व चाय जो भी साथ-साथ ले सकें, अवश्य लें। उसमें परस्पर संवाद में भी सजीवता रहे। इस प्रकार दिन में कभी एक समय सब मिल कर पूजा, प्रार्थना, आरती, हनुमान चालीसा या अन्य कोई स्तुति या स्तोत्र पाठ साझे सम्मिलित रूप में सामूहिक करें। ऐसा न सम्भव हो तो सप्ताह में एक बार अवश्य ऐसा करें।

कुटुम्बीजन जब अलग-अलग व दूर-दूर बसे घरों में रहते हो, तब भी सप्ताह में एक बार या एक माह में एक बार या रक्षाबन्धन, दिवाली व होली के अवसर पर एक सहभोज, सामूहिक पूजा, साझा स्त्रोत्र पाठ या कोई छोटी कथा का आयोजन भी कुटुम्बीजनों में समीपता व एकत्व का निर्माण करता है। अपने कुल देवता की पूजा, प्रार्थना, गीत आदि कई कार्य ऐसे सहभोज व साझी प्रार्थना का माध्यम बन सकते हैं। वर्ष प्रतिपदा, रामनवमी, वैशाख पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, रक्षा बन्धन, दीपावली, कार्तिक पूर्णिमा, मौनी अमावस्या, नवरात्रि आदि अवसरों पर सामूहिक भोज, पूजा आदि सम्भव है।

भौतिक दूरियाँ कभी भी बाधक नहीं होती हैं, दिलों में समीपता परम आवश्यक है। लेकिन, सौभाग्य से हम परिवार में साथ ही रहते हैं तो दिन में एक बार और वह यदि सम्भव नहीं हो तो सप्ताह में एक या दो बार परिवार में साथ में खाना खाएँ या अल्पाहार साथ करें या चाय भी सबके साथ पीयें और सामूहिक प्रार्थना या पूजा भी करें। इस सबमें यंत्रवत औपचारिकता मात्र नहीं, परस्पर सौहार्द, सम्मान, परिहास निकट स्नेह व व्यवहारगत सरलता भी होनी चाहिए।

5. स्नेहपूर्ण संवाद, मनोविनोद व रोचकता का वातावरण : परिवार व कुटुम्ब में बिताया हर पल व उसकी स्मृति हममें अकूत उत्साह, प्रेरणा व उल्लास जगा सके, ऐसा स्नेहमय वातावरण होना चाहिए। इसके साथ ही आत्मीयतापूर्ण संवाद, हँसी-खुशी और रोचकता पारिवारिक जीवन में परम आवश्यक है। आरोप-प्रत्यारोप, ईर्ष्या, द्वेष, मनभेद जैसे विष बीज पारिवारिक संवाद में न आयें। स्नेह व आत्मीयता बढ़े एवं उसकी अधिकाधिक अभिव्यक्त हो और वह भी सहज रूप में हो, उसमें बनावटीपन भी नहीं होवे। पारस्परिक जुड़ाव, समीपता एवं सम्मान में वृद्धि हो और परिवार में अत्यन्त गरिमामय वातावरण होना चाहिए।

परिवार व कुटुम्ब में सब लोग खुलकर बातें करें, साथ में खेलें, बच्चे आपस में हिल मिलकर खेलें, बच्चे, माता-पिता और दादा-दादी पोता-पोती आदि सभी साथ में निरहंकार-पूर्वक वार्तालाप करें व अनुभव साझे करें। यह सबके लिए जरुरी है। कुटुम्ब व घर के आबाल-वृद्ध खूब हिलें, सब मिलकर बच्चों के भी उत्साह में वृद्धि करें, पहेलियाँ भी पूछें, बोध कथाओं की चर्चा करें, सामयिक घटनाक्रमों पुराणों के आख्यानों आदि की भी चर्चा करें। बच्चों से बातचीत में सदैव उनमें सद्गुणों की वृद्धि हो ऐसे घटनाक्रमों की अवश्य चर्चा करें। उनकी भी बात पूरी गम्भीरता व संवेदनशीलता के साथ सुनें, उनमें आत्म-विश्वास जगायें, करूणा व सहयोग के संस्कार विकसित करें।

6. परिवार को सर्वोपरि प्राथमिकता : परिवार व कुटुम्ब के सदस्यों के लिए सदा समय निकालें, उसे बोझ नहीं मानें, इसे अपना सौभाग्य मानें। यह मानें कि परमात्मा ने आपको परिवार के सुख-दु:ख में सहभागी होने का अवसर दिया है। परिवार के लिए लगाये हर पल का कई गुना प्रतिलाभ परमात्मा देता ही है। परिवार के लोगों की सेवा, उनके सुख के लिए योगदान, संकट के समय उनका सहयोग आदि अनन्त पुण्यदायी कार्य हैं। हमारे पुराणों में आता है कि परिवार में वृद्ध व अशक्त परिजनों की सेवा शुश्रूषा हमारे अनेक पूर्व जन्मों के पाप कर्मों को भी धो डालती है, ऐसे अनेक पौराणिक आख्यान हैं। ऐसी ही अनगिनत लोक कथाएँ व दादी-नानी की कहानियाँ भी हैं। परिवार व कुटुम्ब में हम ही एक-दूसरे का अवलम्बन हैं।

इसलिए परिवार को सदैव उच्च प्राथमिकता दें और उसे सदा व्यक्त भी करें। समाज जीवन में मित्र भी होना परम आवश्यक हैं, पर परिवार की उपेक्षा न कर, परिवारजनों को भी उच्च प्राथमिकता देना अनिवार्य है। परिवार के साथ प्रफुल्लसा व उत्साहपूर्वक समय बितायें। परिवार में सब हमें, एक समस्याओं का समाधान कर देने वाले सदस्य के रूप में पायें, यह भी परम आवश्यक है।

7. बच्चों की दिनचर्या में सार्थकता लायें : बच्चों का उचित विकास हो, उनमें कुसंस्कार व कुप्रवृत्तियाँ नहीं आयें। इस हेतु सभी परिजन मिलकर बच्चों की दिनचर्या को सार्थक व मूल्यपरक बनायें। भिन्न-भिन्न आयु के बच्चों की रुचि, प्रवृत्ति व क्षमता के अनुरूप उनमें सृजनकता व सत्संस्कारों का विकास हो, ऐसी दिनचर्या व तदनुरूप ही उन्हें सान्निध्य प्रदान करें। इसके लिए बच्चों के लिए समय निकालें। अपना समय बचाने के लिए उन्हें दूरदर्शन या स्मार्ट फोन की आदत न डाल दें। खाली समय में भी सोचते रहें कि अब आगे बच्चों को कौनसी कहानी, किस प्रयोजन से सुनानी है। उनकी आयु के अनुसार कौन सी सृजनात्मक गतिविधियों में उन्हें संलग्न करना चाहिये। बच्चों को पढ़ाई व खेलकूद के अलावा दूसरे रोचक, ज्ञानवर्द्धक व रचनात्मक काम भी सिखाएँ। यह उन्हें व्यस्त ही नहीं उत्साहित व विनम्र भी रखेगा और उन्हें अनुचित हरकतों या शरारतों के लिए समय ही नहीं मिलेगा। बढ़ते बच्चों को घर में पूजा-पाठ से लेकर अतिथि सत्कार व शादी तक के कार्यक्रमों में भागीदार बनाएँ, उसमें काम दें व जिम्मेदारी दें, आस पड़ोस में हो रहे सामाजिक कार्यों में भी उसे मदद करने के लिए और भागीदार होने के लिए प्रेरित करें। यह जरुरी है, इससे वह जिंदगी में जीने कि कला सीखेगा, नये-नये कौशल या स्किल्स सीखेगा। अभ्यागत, अभावग्रस्त, वृद्धों व अशक्तजनों के प्रति बच्चों में संवेदना व सम्मान का भाव विकसित करना चाहिए। उनमें आत्मविश्वास, आस्तिकता, करूणा, सत्यनिष्ठा, स्वावलम्बन, परिश्रमवृत्ति व अपना काम स्वयं करने की आदत विकसित करें।

8. पर्व व त्यौहारों से शिक्षा : हमारे पर्व व त्यौहार, लोक शिक्षण व लोक व्यवहार की शिक्षा व प्रशिक्षण के सशक्त माध्यम हैं। बच्चों में सत्प्रवृत्तियों, समूह जीवन एवं संस्कारों की उदात्तता लाने में त्यौहार, उनकी पद्धतियाँ, रीति-रिवाज, उनका इतिवृत्त और उनकी शिक्षाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन त्यौहारों के आयोजन व उनके विहित क्रिया-कलाप भार नहीं है। उदाहरणत: कृष्ण जन्माष्टमी पर कृष्ण की झांकी बनाने के साथ ही प्राचीन द्वारिका के 5000 वर्ष पुराने पुरावशेषों सहित, कृष्ण के धर्मसंस्थापना के भागीरथ प्रयास, उनका राष्ट्रीय अस्मिता के लिए किया पराक्रम, उनके गीता के उपदेश आदि की चर्चा आबाल-वृद्ध सभी में आस्था, ज्ञान, उत्साह व कर्त्तव्य परायणता का विकास करती है। इसी प्रकार वर्ष प्रतिपदा से गौरी पूजन व राम नवमी से लेकर रक्षा बन्धन, दीपावली, मकर संक्रान्ति, ओणम, बैसाखी, शिवरात्रि, होली, शीतला सप्तमी, दशामाता व रंग-तेरस आदि सभी त्यौहारों की अपनी सार्थकता है। उन्हें मनायें, उनसे हम ज्ञान लें व सबको दें ।त्यौहारों पर धर्म चर्चा अवश्य की जाये।

त्यौहारों और संस्कारों में सब लोग उत्साहपूर्वक भाग लें बच्चों में भी यही संस्कार उत्पन्न करें। छोटे-बड़े सबकी संवेदनाओं व संवेगों को समझें, सबकी सुनें, सभी को बोलने का अवसर दें।

परस्पर मिलना, बड़ों के चरण-स्पर्श, आशीर्वाद लेना व सम्बन्धियों का परस्पर मिलने का एक-दूसरे के घर जाना भी महत्त्वपूर्ण हैं।

9. सम्बन्धों की गहराई व पवित्रता बढ़ायें : हम अपने देश में ममेरे, चचेरे, मौसेरे व फुफेरे भाई बहिनों से भी, सगे भाई बहिनों जैसा ही व्यवहार करते आये हैं। कुटुम्ब व परिवारों में सब सगे भाई बहन जैसे रहते आये हैं, और सबमें अटूट स्नेह होता आया है। सभी भाई बहन प्यार से रहें। सगे भी और चचरे, ममेरे, फुफेरे भाई-बहन भी प्यार से रहें। इससे जिंदगी परम सुखी रहेगी। यही नहीं पारिवारिक मित्रों व पड़ौसियों के बच्चों में ही भाई-बहिनों का सा पवित्र भाव रहता आया है। आज के कामुक सीरियल ऐसे रिश्तों में भी कभी-कभी कुत्सित कामुकता का विष घोल देते हैं। उसके विपरीत हमारे यहाँ तो परिचित, नव परिचित या अपरिचित किशोर-किशोरियों, युवक-युवतियों एवं वयस्क पुरुष-स्त्रियों में भी वही पवित्र भाई-बहिन का भाव रहा है। कुटुम्ब के सभी प्रकार के सम्बन्धों को बल दें। बच्चों के मनों में उनकी महत्ता, पवित्रता व गहराई को ठीक से अंकित करें। हमारे सवांद व व्यवहार में सभी रिश्तों का महत्त्व प्रकट होना चाहिए। सबके प्रति सम्मान व सहकारिता भी प्रकट होनी चाहिए।

10. संचार व सूचना प्रौद्योगिकी से भी सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनायें : आजकल स्थानों की दूरियों व व्यस्तता के बाद भी मोबाइल सबके पास है, उसमें अपने वृहत परिवार या कुटुम्ब के एक से अधिक समूह या ग्रुप बनाएँ। मामा, चाचा, ताऊ, मौसी, भूआ आदि के सभी परिवारजनों एवं भाई बहन जुड़े हैं। आजकल के बच्चे इस सब में संवेदनशील भी हैं। उन्हें सही दिशा दें, इन सम्बन्धों में पवित्र भावों का सृजन करें आज के जन संचार माध्यम उनमें कितना ही विष घोलने का प्रयास करें। हमारी सकारात्मक चर्चायें एवं आचरण में अनुकरणीय आदर्श जादुई असर करते हैं। पूरी तीन पीढ़ी के सम्बन्धी परस्पर जुड़ाव अनुभव करेंगे। सबके सुख-दु:ख की जानकारी सबको होगी, परस्पर संवेदनायें भी व्यक्त करेंगे। बधाई, अभिवादन का भी आदान-प्रदान होगा।

11. गरिमामय व सम्मानजनक सम्बन्ध : परिवारों में एवं कुटुम्बीजनों में संवाद अत्यन्त सम्मानजनक व गरिमापूर्ण होने चाहिए। बड़े-छोटे की मर्यादा बनाये रखने का पूरा प्रयास करें। चाहे आयु में चन्द महीनों का अन्तर हो या चन्द दिनों का, आयु में थोड़े बड़ों का सदैव सम्मान रखें व रखने का आग्रह करें, सम्बन्धों में अटूट स्नेह, सहकारिता व पवित्रता बनी रहेगी। परस्पर कभी झल्लाएँ नहीं, खीझें नहीं व चिल्लाएँ नहीं। धीमी व संयत आवाज में सम्मान पूर्वक व आत्मीयता के साथ बात करें। बड़े-छोटे की मर्यादा का पालन करते हुये हम यदि कभी लड़ेंगे नहीं, तो बच्चों में भी पारस्परिकता व सहकारिता के संस्कार आयेंगे। माता-पिता, चाचा-चाची, भूआ-फूफा, मौसा-मौसी, भाई-भाभी, दादा-दादी व नाना-नानी के रूप में यह ध्यान रखें कि बच्चों के सामने कभी न लड़ें, न कटुता पूर्वक झिड़कें व न ही घृणा या तिरस्कार-पूर्वक चीखें। सदैव प्यार से नम्र व्यवहार ही करें समय समझाईश का भाव रखें व स्थिति के अनुसार अगर परिवार में समझौता करके चलना पड़े, झुकना पड़े तो अवश्य झुक जाएँ और समझौता करें। परिवार में सौहार्द के हित में सब अनिवार्य है। बच्चों से भी तूं-तड़ाक न कर, आप के सम्बोधन के साथ गरिमामय व्यवहार करें। तब ही वे भी अपने व्यवहार में गरिमा रखेंगे।

वस्तुत: हमारा घर-परिवार हम समस्त परिजनों के लिए अनिवर्चनीय प्रफुल्लता का स्रोत बने यह आवश्यक है। हमें उसे वैसा बनाने व बनाये रखने का प्रयास करने चाहिए। एक पक्षी भी दिन भर की चिलचिलाती धूप में भटकने के बाद, क्लान्त व थका-हारा जब अपने घोसले में लौटता है, तब चाहे उसे आहार मिला हो अथवा नहीं, घोसले में उसकी प्रफुल्लता देखते ही बनती है। उसके नख से शिख तक, हर छोटे-बड़े पंख में, उसकी सुमधुर कलरव आदि में असीम प्रसन्नता झलकती है, हमारे घर-परिवार के प्रति वही भाव व व्यवहार, हमारे समस्त परिजनों में भी उसी आल्हाद व आनन्द का सञ्चार करे, यह हमारा परम कर्त्तव्य है। परिवार में आबाल-वृद्ध कोई भी सदस्य, चिन्ता या आवेग में हो तब हमारा कर्त्तव्य है कि हम सबकी चिन्ता रखते हुये धैर्य पूर्वक सबका परितोष करें, सहयोग करें, व उसे सबका यथोचित सहयोग दिलायें।

निष्कर्ष रूप में हमें अपने निजी स्वार्थों, कष्टों व सुखों की निजी लालसा व एकाकी हित-अहित की तुलना में, अपने परिवारजनों व कुटुम्बियों के प्रति उच्च संवेदनशीलता, सद्भाव व सहयोग की वृत्ति बनाये रखनी चाहिए। हमारा परिवार, विविध सम्बन्धों या रिश्तों के असीम व अनन्त मनोरम रंगों वाला एक अत्यंत सुकोमल व मनोहारी इन्द्रधनुष है। इसमें किसी एक सम्बन्ध के रंग के भी थोड़ा धूमिल होने पर पूरा इन्द्रधनुष धूमिल व विद्रूप हो जाता है। इसलिए, हम सबका सर्वोपरि कर्त्तव्य है कि अपने परिवार व कुटुम्ब रूपी इन्द्रधनुष में अपने अपने सम्बन्धों के अनुरूप अपने कर्त्तव्य पालन के रूप में जितने मनोरम रंगों का जितना अधिक से अधिक योगदान दे सकते हैं वह दें। उसमें कभी भी कमी नहीं आनी चाहिए। इसका अर्थ है कि अपने परिवार व कुटुम्ब में हम चाहे एक पुत्र-पुत्री, पिता-माता, दादा-दादी, पौत्र-पौत्री, नाती-नातिन, पुत्रवधू-दामाद, मामा-मामी, चाचा-चाची, मौसी-मौसा, बुआ-फुफा, भांजा-भांजी, भतीजा-भतीजी, नाना-नानी चचेरे, ममेरे या फुफेरे भाई अथवा बहिन या जीजा या अन्य किसी भी रूप में हैं, अपने जीवन की सार्थकता ही, इसमें समझनी चाहिए कि हम नि:स्वार्थ व पवित्र भाव से, बिना किसी प्रकार के प्रतिलाभ अर्थात् बदले में कुछ पाने की भावना या प्रति उपकार की अपेक्षा

रखते हुए परिवार व कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य का अधिकतम सहयोग करें, आत्मीयता रखें, उसे व्यक्त भी करें, एक दूसरे से सुख-दु:ख में सहभागी हो एवं पूरी संवेदना रखें। इसमें सर्वाधिक पहल हम करें।

सुख का आधार संयुक्त परिवार

संयुक्त परिवार का विचार आते ही एक ऐसे बड़े, विस्तृत व सम्मिलित परिवार का चित्र हमारे मस्तिष्क में उभरता है जहाँ दादा-दादी, बेटे-बेटियाँ, बहुएँ-दामाद, पोते-पोतियाँ, नाती-नातिन, चाचा-चाची, ताऊ-ताई आदि साथ-साथ रहते, खेलते-खाते, उठते-बैठते व मिल-जुलकर रहते हैं। यदि नौकरी व व्यवसाय के कारण, कुटुम्बीजनों को अलग-अलग एकल परिवारों में रहना पड़ता है। तब भी निश्चित अन्तराल पर मिलना जुलना सह-भोज व पर्व-त्यौहारों पर एकत्र होकर उन्हें साथ-साथ मनाना भी परम उल्लास प्रदान करता है, परस्पर स्नेह बढ़ाता है और सहकार व सुरक्षा की भी अनुभूति देता है। यूं कहने को एक संयुक्त परिवार में सबसे ज्यादा लाभ बच्चों को होता है। लेकिन, वास्तव में संयुक्त परिवार में रहने वाले प्रत्येक सदस्य के लिए अकूत सुख की अनुभूति या अवर्णनीय लाभ देता है। यह तो सत्य है कि, बच्चों को संयुक्त परिवार में दादा-दादी का अपूर्व स्नेह प्राप्त होता है। दादी-नानी की कहानियाँ सुनने को मिलती हैं लेकिन, वृद्ध माता-पिता व दादा-दादी व अन्य बड़ों की भी वृद्धावस्था चिन्ता रहित व सुख पूर्वक, संयुक्त परिवार में ही निकलती है। दूसरी और बच्चों को दादा-दादी, नाना-नानी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची व बड़े चचेरे भाई बहनों से उनके आदर्शों से संस्कार मिल जाते हैं। इसीलिए, हिन्दुत्वनिष्ठ परिवारों में संस्कृति, सामाजिकता और परंपराएँ जीवित रहती हैं। इसी तरह आपसी मेल-जोल, परस्पर व्यवहार के व सतत संवाद के माध्यम से ही पीढ़ी दर पीढ़ी सारी परम्पराएँ सजीव व अक्षुण्ण रहती हैं। बच्चे संयुक्त परिवार में अलग-अलग पीढ़ियों के लोगों के व्यवहार को बड़े गौर से देखते हैं, उनकी अच्छाईयों को अपनाते हैं और उनसे निरन्तर सीखते हैं। छोटी उम्र से ही वे बड़ों के आपसी व्यवहार से भी अनेक अच्छी चीजें, भाव संवेदनाये व भावात्मक बुद्धि (इमोशनल इण्टेलिजेन्स) मन-मस्तिष्क में जमा करते रहते हैं। इस प्रकार एक आदर्श हिन्दू संयुक्त परिवार, वेदों, उपनिषदों व अन्य धर्म ग्रन्थों में उल्लिखित सामूहिक राष्ट्र जीवन का सजीव आदर्शों को सुदृढ़ करता है। परिवार का हर सदस्य, अपने निजी अहम् को भूलकर संयुक्त परिवार के व घर के प्रत्येक सदस्य के विकास में परस्पर भरपूर योगदान देते हैं। और स्वयं भी विकास करते जाते हैं। इसी तरह संयुक्त परिवार, भूतकाल, वर्तमान व भविष्य के बीच एक जीवंत सेतु का काम भी करता है। अगर हम हिन्दू हजारों ही नहीं लाखों साल से अपनी चिरन्तर संस्कृति और परंपराओं को यथावत व अक्षुण्ण रखने में सफल हुए हैं तो इसका श्रेय हमारी इसी परिवार पद्धति को जाता है।

परिवारों में अलगाव, पृथकता, मन-मुटाव आदि की स्थिति व्यक्ति को अवसाद में ले जाती है। विखण्डित व क्लेश से विभाजित परिवारों में ही परिवारजनों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं की संख्या सबसे अधिक है। परिवार विखण्डन के कारण ही लोगों में जीवन की आपा-धापी, प्रतियोगिताजन्य क्षोभ एवं उससे उपजी समस्याओं की दशा में व्यक्ति में छोटी-छोटी प्रतिकूलताओं का सामना करने का सामर्थ्य नहीं बचती है। दूसरी ओर संयुक्त परिवार की बात करें तो उसमें कोई भी सदस्य अलग-थलग या एकांतिक महसूस नहीं करता और वहाँ सब मिलकर रहते हैं और एक-दूसरे को सहारा देते हैं। इसलिए गम्भीर प्रतिकूलताओं में भी व्यक्ति मनोबल बनाये रखने में सफल होता है। अलग-अलग व दूर-दूर निवास होने पर भी एकात्म भाव आवश्यक बड़े व संयुक्त परिवार आज चाहे, कम होते जा रहे हैं पर आज भी भारत में बहुसंख्य में परिवार, अटूट स्नेह व सहकारपूर्ण बन्धनों से जुड़े हैं। परिवार या बड़े संयुक्त परिवार परिस्थितिवश चाहे अलग-अलग शहरों में जा बसे हैं। तब भी अलग-अलग रह रहे अधिकांश ऐसे छोटे-छोटे परिवार भी, अपनी जड़ों से परस्पर जुड़े रहते हैं। घर गृहस्थी की समस्याओं या दूर-दूर नौकरियाँ व कारोबार के कारण, छोटे-छोटे फ्लैट या मकानों में अलग-अलग रह रहे परिवार भी आपस में जुड़े रह सकते हैं और दूर-दूर रहकर भी सभी कुटुम्बीजन अपने कुटुम्ब को एक वृहत संयुक्त परिवार का रूप दे सकते हैं। समय-समय पर एकत्र आते रहना सबका सामूहिक रूप से मिलते रहना और सुख दु:ख बाँटते रहने की परम्परा बनी रहनी चाहिए। आज कल सामाजिक माध्यमों (सोशल मीडिया) यथा व्हाट्सएप आदि से भी एकता व समीपता का अनुभव करते रह सकते हैं।

परिवार व कुटुम्ब के सभी सदस्यों के बीच ये सारे व्यवहार यंत्रवत या मात्र दिखावे के लिए अथवा केवल अपना प्रभुत्व स्थापना के भाव से न होकर, स्नेह व आत्मीयतापूर्वक किये जाने चाहिए। यह आत्मीयता, स्नेह व परस्पर सम्मानजनक सम्बन्ध बाल्यकाल से ही सृजित किये जाने आवश्यक हैं। परिवारों में एक भावात्मक एकता लाने हेतु भावात्मक बुद्धिमत्ता अर्थात् इमोशनल इण्टेलिजेन्स का विकास भी परम आवश्यक है। परिवार में सब लोग परस्पर एक दूसरे की भावनाओं को समझे व उनका परस्पर आदर करें, इस हेतु भावनात्मक प्रज्ञा का विकास आवश्यक है। परिवारों में परस्पर स्नेह आत्मीयता, कर्त्तव्यपरायणता, राष्ट्र, समग्र जीव सृष्टि, प्रकृति व समष्टि पर्यन्त एकात्मता के अनगिनत उपदेश शास्त्रों में हैं। हमारे गृह्य सूत्रों, पुराणों व स्मृतियों में भी गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों व परिवारजनों के पारस्परिक कर्त्तव्यों व भावात्मक एकता का विस्तृत विवेचन है। वेद जो विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ है, उनमें भी परिवार के सभी सदस्यों के परस्पर कर्त्तव्यों का अतीव महत्त्व बतलाया है। ❑

कुटुम्ब से वसुधैव कुटुम्बकम् तक

हनुमान सिंह राठौड़
शिक्षाविद एवं
सामाजिक अध्येता

भारत के समाज-जीवन की संसार को सबसे बड़ी देन कुटुम्ब की आदर्श संकल्पना है। दार्शनिक ऋषियों ने व्यष्टि से समष्टि तक एकात्म जीवन दर्शन की अनुभूति के आधार पर 'स्वदेशो भुवनत्रयम्' व अन्ततः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का बीज-मंत्र दिया तथा इसकी सिद्धि के लिए साधना-स्थली, तपो भूमि कुटुम्ब को बनाया। भारतीय चिंतन परम्परा में कुटुम्ब व्यवस्था के मूलाधार हैं - आश्रम व्यवस्था, संस्कार व्यवस्था, पुरुषार्थ चतुष्टय, पंच महायज्ञ तथा ऋण व्यवस्था।

आश्रम व्यवस्था - आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति 'आ' उपसर्ग पूर्वक श्रम धातु से हुई है - 'आश्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रमः' अर्थात् ऐसा जीवन-क्रम जिसमें व्यक्ति अत्यन्त श्रम करता है। वह स्थान जहाँ श्रम किया जाता है उसे भी आश्रम कहते हैं। आश्रम चार हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। तीनों आश्रम गृहस्थाश्रम की धुरी पर चलते हैं। गृहस्थाश्रम के श्रम का केन्द्र कुटुम्ब है। ब्रह्मचर्याश्रम में इंद्रिय संयम तथा विद्यार्जन हेतु श्रम करना होता है। गृहस्थाश्रम में क्रियात्मक तथा रचनात्मक श्रम की प्रधानता होती है। वानप्रस्थ आश्रम में कुटुम्ब भाव का विस्तार समाज व राष्ट्र पर्यन्त करने तथा अपना अधिकतम समय समाज-सेवा में लगाने के लिए परिश्रम करना होता है। संन्यासाश्रम 'ईशावास्यमिदं' की अनुभूति को राष्ट्र की सीमाओं से बाहर, समष्टि तक व्याप्त करने की अवस्था है। इस आश्रम में योग साधना द्वारा अध्यात्म की उच्चतम लब्धि मोक्ष, कैवल्य की प्राप्ति के लिए श्रम किया जाता है। इससे उसकी चेतना का विस्तार वैश्विक होता है और उसके कुटुम्ब-परास में समस्त वसुधा के जड़-चेतन आ जाते हैं, गीता के अनुसार वह 'सर्व भूत-हित में रत' हो जाता है।

चारों आश्रम क्रमागत हैं, आदर्श समाज व्यवस्था के सोपान हैं तथा मानव मनो विज्ञान के आधार पर निर्मित अत्यन्त वैज्ञानिक समाज-शास्त्रीय रचना हैं। आज आश्रम व्यवस्था में व्यतिक्रम हुआ है। केवल ब्रह्मचर्याश्रम व गृहस्थाश्रम क्या है - उसमें भी ब्रह्मचर्याश्रम में से इन्द्रिय संयम का लोप होकर केरियर के लिए डिग्री-अर्जन बचा है तथा गृहस्थाश्रम में संस्कार, पंचमहायज्ञ, ऋण-स्मरण का विस्मरण तीव्रता से बढ़ते हुए पुरुषार्थ में से केवल अर्थ और काम प्रभावी है। परिणाम! पीढ़ी अन्तराल के कारण देश-काल-परिस्थिति के अनुसार आचार-विचार में अन्तर घरों में कलह का कारण बन रहा है और परिणाम वृद्धाश्रमों की वृद्धि है और समाज कार्य शासकीय या विदेशी वित्त पोषित एन.जी.ओ. के हवाले है। संन्यासाश्रम के लोप से दो परिणाम हुए हैं - एक, विश्व को आप्लावित करने वाली आध्यात्मिक-तरंगों में विरलता आयी है तथा 'अरण्य-संस्कृति' के लोप से वनवासियों की धर्म-चेतना-संस्कार-व्यवस्था भंग हुई जिससे इवैजेलिकल फोर्सेस को खुल कर खेलने का अवसर प्राप्त हो गया।

गृहस्थाश्रम कुटुम्ब निर्माण से प्रारम्भ होता है और इसके लिए दीक्षान्त के बाद ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी विवाह-संस्कार से आबद्ध होते हैं। अथर्ववेद (3-24-11-18) के अनुसार कन्या ब्रह्मचर्य का सेवन करके अर्थात् विद्या निष्णात होकर विद्वान एवं युवा पति का वरण करे -

'ब्रह्मचर्य्येण कन्या
३युवानं विन्दते पतिम्।।'

विवाह के उपरान्त जिस कुल में भार्या और भर्त्ता परस्पर संतुष्ट, प्रसन्न रहते हैं उस

कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है, ऐसा मनु महाराज का कथन है –

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता
भर्त्ता भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं
कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। (मनु. 3-60)

वेदों में सफल दाम्पत्य जीवन के लिए परस्पर प्रेम के साथ वधू को ससुराल में साम्राज्ञी होने, सुसन्तति युक्त तथा सौभाग्यवती होने की कामना की गई है –

साम्राज्ञी श्वसुरे भव
सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव
सम्राज्ञी अधि देवृषु।। (ऋ. 10-85-46)

'हे वधू! आप सास, श्वसुर, ननद और देवरों की साम्राज्ञी के समान हों, आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हों अर्थात् अपने परिवार में सबके मनों पर राज करो।'

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः
सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयनिन्द्र मीद्व
सुपुत्रा सुभगासति।। (ऋ. 10-85-25)

'हे कन्ये! इस पितृकुल से आपको मुक्त करते हैं, लेकिन पतिकुल से नहीं। उस (पति-कुल) से आपको भली प्रकार सम्बद्ध करते हैं। हे कामनावर्षक इन्द्रदेव! यह वधू सुसंततियुक्त और सौभाग्यवती हो।'

अहोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्
त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह सं भवाव
प्रजाना जनयावहै।। (अथर्व. 14-2-71)

'हे नारी! मैं पुरुष प्राणतत्त्व विष्णु हूँ तो आप देवि (लक्ष्मी) हैं, मैं सामगान हूँ तो आप ऋक् (ऋचा) हैं, मैं द्युलोक (सूर्य शक्ति) हूँ तो आप सहनशीलता की प्रतीक पृथिवी हैं। हम दोनों परस्पर स्नेह से संयुक्त होकर श्रेष्ठ संतति को जन्म दें।'

सुयोग्य जीवन साथी, सुसंतति की प्राप्ति व पालन-पोषण तथा कुटुम्ब में परस्पर प्रेम एवं सौहार्द से अर्जित सम्मान से पुष्ट परिवार की कामना भारत में सदैव से रही है –

सानंदं सदनं सुताश्च सुधियः
कान्ता न दुर्भाषिणी।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति
रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।।
आतिथ्यं शिवपूजनं
प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।
साधोः संगमुपासते हि
सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।।

'घर में सब सुखी हों, घर आनन्ददायक हो, संतान सुमति सम्पन्न हो, कान्ता दुर्भाषिणी नहीं हो अर्थात् मधुर बोलने वाली हो, हितैषी मित्र हों, धर्मानुसार उपार्जित धन हो, अपनी पत्नी में ही प्रीति रखने वाले नीतिवान, चरित्रवान पुरुष हों तथा आज्ञापालन करने वाले परिचारक हों। अतिथि देवोभवः के भाव से आगन्तुक का सम्मान हो, ईश्वरोपासना-साधना हो, प्रभु प्रसाद के रूप में प्रतिदिन सात्विक व्यंजन मिलते हों, साधु-संतों का सतत् सान्निध्य मिलता हो, ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है, और ऐसा परिवार आदर्श है। ऐसे परिवार में संस्कारों के लिए उपदेश देने की आवश्यकता नहीं होती तथा सदस्य पथ-भ्रष्ट हों इसकी संभावना नहीं रहती। परिवार समन्वित कर्तव्यों की कर्म भूमि होती है अतः आबाल वृद्ध की अपनी तय भूमिका होती है। सबकी शक्ति का उपयोग परिवार के श्रेयार्थ होता है तब कुटुम्ब सशक्त एवं सम्पन्न होता है, जब सब अपने सामर्थ्य का प्रेयार्थ प्रयोग प्रारम्भ करते हैं तब परिवार में ईर्ष्या, द्वेष कलह व अन्ततः विघटन होता है।'

व्यक्ति व समाज दोनों को कुटुम्ब के माध्यम से एक दूसरे का पूरक, साधक और सहायक बना दिया अर्थात् कुटुम्ब व समाज का अनुशासन हमारी विवशता नहीं, विशेषता बन गया। इस प्रकार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के संतुलित समन्वय का मूलाधार कुटुम्ब है। यह भारतीय कुटुम्ब-संयोजना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सिद्धि का लघु रूप है। जिस दिन समस्त संसार इस वैज्ञानिक कुटुम्ब – संकल्पना के अनुरूप आचरण करने लगेगा, सारा संसार एक परिवार की तरह सामंजस्यपूर्ण सह अस्तित्व के साथ रहने वाली सुंदर, सुखद रचना में बदल जाएगा।

संस्कार-व्यवस्था – संस्कार वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति, वस्तु या स्थान की पूर्वावस्था से उन्नत अवस्था की प्राप्ति होती है। व्यक्ति के संस्कार में पंचकोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय कोशों) का संस्कार आता है। उपनिषदकारों के मत में 'संस्कारोति इति संस्कारः' अर्थात् जो निर्मल या शुद्ध करता है, वह संस्कार है। भारत में जन्म की प्रथम अवस्था से मृत्यु पर्यन्त धर्म का महत्त्व है अतः जीवन की प्रत्येक अवस्था में प्रवेश करते समय उस अवस्था के धर्म के प्रति जागरूकता के लिए संस्कार की व्यवस्था की गई है। गर्भाधान से जीव के आह्वान से अन्त्येष्टि तक शास्त्रों में सोलह संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, विद्यारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अन्त्येष्टि संस्कार) का विधान किया गया है। इनमें से प्रथम बारह संस्कार सीधे परिवार की जिम्मेदारी है जिससे संतान श्रेष्ठ बनती है तथा उनका भावी जीवन सफल बनता है। ये संस्कार मानव विकास, मनोविज्ञान तथा आयुर्विज्ञान से सम्बद्ध हैं तथा समन्वित विकास की कार्ययोजना के अन्तर्गत आते हैं।

पुरुषार्थ चतुष्टय – 'पुरौ शेते इति पुरुषः' अर्थात् इस देह (पुरी) में निवास करने के कारण जीवात्मा को पुरुष कहते हैं। जब तक वह उसकी देह में है तब तक उसकी जीवन-यात्रा का प्रयोजन 'पुरुषार्थ' कहलाता है। इसमें वैयक्तित प्राप्तव्य या बनने के क्षुद्र भाव का स्थान नहीं है। ये कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र, विश्व के सामूहिक प्रयोजन के मूलाधार हैं – धर्म, अर्थ, काम

तथा मोक्ष। जिससे अभ्युदय (इहलौकिक भौतिक ऐश्वर्य) तथा नि:श्रेयस् (पारलौकिक सुख/ मोक्ष/ मुक्ति/कैवल्य) की प्राप्ति हो तथा उसके लिए आचरण के नियमों (धारणात् धर्म) को धर्म कहते हैं। अभ्युदय के साधन अर्थ और काम हैं तथा नि:श्रेयस् की साधना के ये आधार हैं। इसके कारण जो समाज के लिए शुभ है उसी अर्थ का उपार्जन तथा उपार्जित का त्यागपूर्वक भोग करना है तो ये क्रियाएँ धर्म के सम्पुट में सम्पन्न होनी चाहिए। इसका प्रेरक उदाहरण दम्पती बनेंगे तो संतति उनका अनुसरण करेगी। अत: पुरुषार्थ चतुष्टय न केवल कुटुम्ब के धर्मत: संचालन व संधारण का आधार है अपितु भावी पीढ़ी की सफलता का सोपान भी है।

पंच महायज्ञ - समस्त जड़-चेतन सृष्टि के रक्षण-पोषण का उत्तरदायित्व परिवार का है। यह कथन अतिशयोक्ति लग सकता है, किंतु दम्पती के कर्तव्यों का जो विधान धर्म शास्त्रों ने किया है उससे स्पष्ट है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कोई लुभावना नारा नहीं है अपितु एक उदात्त लक्ष्य है जिसकी साधना के लिए पंचमहायज्ञों का विधान किया गया है। मनुस्मृति में कहा है-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ:
वितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो
नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। (मनु 3-70)

ब्रह्मयज्ञ है अध्ययन-अध्यापन अर्थात् परिवार में स्वाध्याय की परम्परा स्थापित हो, देश-विदेश की तर्कपूर्ण चर्चा हो, समाज के हितकारक विषयों का चिंतन हो। पितृयज्ञ से तात्पर्य है परिवार में सेवा भाव का जागरण। सेवा वृत्ति जगाने के लिए कुटुम्ब में माता-पिता सहित समस्त सेव्य व्यक्तियों के प्रति समादर व आज्ञा पालन का अभ्यास अपने उदाहरण से करवाना। इससे संतति में श्रम के प्रति पूज्य भाव तथा सेवा का संस्कार जाग्रत होता है। तीसरा यज्ञ है हवन या अग्निहोत्र। 'यज्ञोर्वेविष्ण:' अर्थात् यज्ञ विष्णु है जो समस्त देव शक्तियों को पुष्ट करता है, पंच तत्त्वों का पुनर्भरण करता है तथा पर्यावरण को शुद्ध करता है। यज्ञ का अर्थ ही है कि जिसका जो दाय भाग है उसे प्रदान करना तथा यज्ञशेष का स्वयं भोग करना। बलिवैश्वदेव वह यज्ञ है, जिसमें पशु-पक्षी, कीट-पतंगों आदि सभी सृष्टि के जीवों का रक्षण-पोषण करना। नृयज्ञ अर्थात् अपने घर आये अतिथि, अपरिचित, याचक को भोजनादि सत्कार से संतुष्ट करना। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समस्त सृष्टि की चिंता करने तथा अपने सामर्थ्य एवं पहुँच के अनुसार उनका रक्षण-पोषण करने का केन्द्र कुटुम्ब है। इसी के लिए युवक-युवती विवाह का व्रत धारण करते हैं, प्रजा की अभिवृद्धि करते हैं, 'शत हस्त समाहर' - सौ हाथों से कमाते हैं और **'सहस्त्रहस्त संकिर:'** - हजार हाथों से बाँट देते हैं।

ऋण व्यवस्था - मनुष्य सम्भवतया सबसे निरीह प्राणी है जिस पर माता कृपा करके, अपना स्तनपान नहीं कराये तो वह स्वयं के प्रयत्न से यह क्रिया भी नहीं कर सकता। मनुष्य कर्मयोनि है अत: वह अपने ऋणों से उऋण भी हो सकता है। कुटुम्ब में पंच महायज्ञ भी ऋण मुक्ति के ही प्रयास हैं, किसी पर उपकार नहीं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ''ऋणं ह वै जायते योऽस्ति। स जायमान एव देवेभ्यो ऋषिभ्य: पितृभ्यो मनुषेभ्य:।।'' अर्थात् सभी मनुष्य ऋण रूप से ही उत्पन्न होते हैं। वह देवों, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों के ऋण से उत्पन्न होता है। अर्थात् व्यक्ति पर चार ऋण हैं - देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण तथा मनुष्य ऋण। ऐसा माना जाता है कि इन चारों ऋणों से मुक्त होना ही वास्तविक मुक्ति या मोक्ष है। अन्य सब व्यवस्थाओं की तरह ऋण मुक्ति का प्रयत्न भी कौटुम्बिक है, वैयक्तिक नहीं। अर्थात् ऋण मुक्ति दम्पती का दायित्व है। इन ऋणों से मुक्ति के लिए पंचमहायज्ञ का विधान किया गया है।

उपसंहार - लोक में मनुष्य द्वारा जो व्यवहार अपेक्षित है उसे हमने धर्म कहा है। धर्म के सूत्र हैं - सर्वसमादर, सद्गुण संचय, सर्वज्ञ देवत्व की दृष्टि, सबको अपने जैसा श्रेष्ठ बनाने (कर्णवन्तो विश्वमार्यम्) की कामना, सबको अपने कुटुम्बीजन मानने का विचार (वसुधैव कुटुम्बकम्), सबके सुख की प्रार्थना (सर्वेभवन्तु सुखिन:) आदि। इनकी साधना परिवार में की जाती है तब उनका सहज उद्घोष होता है - 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो।'

व्यक्ति की स्वच्छन्दता और व्यक्ति के व्यक्तित्व का दमन दोनों ही विचार विशृंखल समाज व्यवस्था के एकान्तिक छोर हैं। दोनों को समन्वित कर एक अनुशासित समाज रचना का आधार परिवार है। हमने समाज का सबसे छोटा घटक व्यक्ति नहीं, परिवार को बनाया अर्थात् व्यक्ति को कुटुम्ब संरचना में आबद्ध किया और परिवार को उत्तरोत्तर वृहत् परिवेश-क्रमश: समाज, राष्ट्र, विश्व एवं चराचर जगत से जोड़ा तथा वृहत् के हित में लघु इकाई के त्याग का विधान किया। कुटुम्ब ने व्यष्टि के अहंकार का शमन किया, उसके महत्त्व का अतिशायित्व कर समाज को गौण नहीं बनने दिया और न ही समाज को सम्प्रभु बनाकर व्यक्ति के व्यक्तित्व का दमन कर उसे तुच्छ बनाया। व्यक्ति व समाज दोनों को कुटुम्ब के माध्यम से एक दूसरे का पूरक, साधक और सहायक बना दिया अर्थात् कुटुम्ब व समाज का अनुशासन हमारी विवशता नहीं, विशेषता बन गया। इस प्रकार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के संतुलित समन्वय का मूलाधार कुटुम्ब है। यह भारतीय कुटुम्ब-संयोजना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सिद्धि का लघु रूप है। जिस दिन समस्त संसार इस वैज्ञानिक कुटुम्ब - संकल्पना के अनुरूप आचरण करने लगेगा, सारा संसार एक परिवार की तरह सामंजस्यपूर्ण सह अस्तित्व के साथ रहने वाली सुंदर, सुखद रचना में बदल जाएगा। तब ही हम सच्चे अर्थों में कह सकेंगे कि 'द अर्थ इज फ्लेट', अर्थात् समस्त संसार एक नीड़ बन जाएगा। ❑

आर्षग्रंथ और कुटुम्ब प्रबोधन

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
हिंदी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

कुटुम्ब संस्कारों से सृजित होता है। भारतीय संदर्भों में इसका ग्रहण व्यापक अर्थ में हुआ है। भारतीय ऋषियों ने संपूर्ण वसुधा को कुटुम्ब माना है। प्रचलित अर्थ में परिवार शब्द से हम इसे पहचानते हैं। परिवार नैसर्गिक तो है लेकिन इसे बनाना पड़ता है। यह एक बोध है जिसे भारतीय ऋषियों ने अपनी साधना से कल्पित और सृजित किया है। इसे बनाए रखने के लिए अनेक अवसरों पर प्रबोधन की व्यवस्था की है। राजकुल हो या सामान्य प्रजा, सभी के लिए युग द्रष्टा ऋषियों ने अपना कुटुम्ब संबंधी ज्ञान दिया है। कुटुम्ब व्यवस्था हजारों वर्षों से भारत में मजबूत इकाई के रूप में प्रतिष्ठित रही है। इस व्यवस्था ने एक समूह के रूप में स्वयं को संस्कारित और संगठित तो रखा ही, राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ बनाए रखने में अपूर्व योगदान किया। पूरा विश्व हमारा परिवार है जब ऐसा कहते हैं तो उसकी अनुभूति कैसे जागृत हो उसके लिए भी व्यवस्था की। परिवार भाव के जागरण के लिए ज्ञान आवश्यक है। अपने पुरुषों के पुरुषार्थ और संस्कृति के प्रति निष्ठा बालमन को उत्साहित करती है। वह प्रेरित होकर अपने कुल को मर्यादा के रक्षण के लिए सक्रिय होकर वैसा ही यशस्वी कार्य करने के लिए उद्यत होता है।

किसी राजवंश ने राजसूय यज्ञ किया होगा तो किसी ने अश्वमेध। जिनको ऐसा सामर्थ्य नहीं था उन कुलों ने भी देश-धर्म की रक्षा तथा स्वयं की मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से अनेक कार्य किये। कुछ लोगों ने धर्मशलाएँ बनवाईं, किसी ने कुएँ, तालाब आदि खुदवाए। कुछ कुटुम्बों के प्रमुखों ने नदियों के तट की गंदगी को प्रतिदिन साफ कर उसे ही अपने जीवन की साधना समझा। किसी-किसी ने स्वत: प्रेरित होकर गाँवों के चारों ओर बरगद, पीपल, पर्कटी, नीम, आम, जामुन के पेड़ लगाए। कुछ लोगों ने नालों, गड्ढ़ों, तालाबों के तट पर कदम्ब, सहजन, इमली, आँवला तथा विभिन्न प्रकार के सुगंधित वृक्ष लगाए। कुछ लोगों ने दूसरों की खाली पड़ी जमीन पर अनुमति लेकर कटहल, महुआ, आम, खिरनी आदि के पेड़ लगाए। नियमानुसार उसके फलों में पीढ़ी-दर-पीढ़ियाँ हिस्सेदार भी बनी रही। कुछ परिवारों ने मंदिरों को विभिन्न प्रकार के पवित्र वृक्षों यथा - शमी, खैर, गूलर आदि के साथ आक, ढाक, अपामार्ग, जवाकुल, कुश और दूर्वादल लगाए। कुछ परिवारों ने

कुएँ पर रस्सी बंधी हुई बाल्टी को यात्रियों के पानी पीने के लिए रख दिया। किसी ने गुड़ और बतासे पूरी गर्मी खिलाए। किसी परिवार के तैराक ने किसी डूबते हुए व्यक्ति को नदी-तालाब या कुएँ से बचाया। इस प्रकार की अनेक कथाएँ हैं जो परिवार में घटित हुई हैं या होती रहती हैं। प्रत्येक परिवार ने कोई न कोई बड़ा पुण्य कार्य या समाज कार्य किया है। उन कथाओं के श्रवण और कथन की व्यवस्था कुछ वर्षों में लुप्त हुई है। ये कथाएँ संस्कारों का सृजन कर कर्म मार्ग में अग्रसर करती हैं। ये संस्कार जब सामूहिक रूप से प्रबल होते हैं तो वे तीर्थयात्रियों के लिए भंडारों, छाया, मंदिर निर्माण, विद्यालय का भवन, गुरुकुल का भवन तथा व्यवस्था, अस्पताल तथा चिकित्सा व्यवस्था से लेकर देहदान तक का संकल्प लेने के लिए उद्यत कर देते हैं।

भारतीय साहित्य का आदि काव्य वाल्मीकि रामायण है। वाल्मीकि मुनि ने अपने आश्रम में जन्म लिए लव-कुश को उनके परिवार की कथा को विस्तार पूर्वक सुनाया था। लव-कुश को धर्मशास्त्र तथा वेद के साथ ही संगीत शास्त्र का अध्ययन भी करवाया था। दोनों भाई संगीत शास्त्र के ज्ञाता थे। स्थान और मूर्च्छना के ज्ञाता थे। स्थान की व्याख्या में वाल्मीकि रामायण की टीका में बतलाया गया है कि वे मन्द्र, मध्यम और तारस्वरूप त्रिविध स्वरों की उत्पत्ति के स्थान से परिचित थे। जहाँ स्वर पूर्ण होते हैं, उस स्थान को मूर्छना कहते हैं। वीणा आदि के वादन को भी मूर्छना कहते हैं। इसकी भी इन्हें जानकारी थी। इतने ज्ञान के कारण ही वे रामकथा का सस्वर गायन कर समाज को उस यशस्वी चरित्र और पराक्रमी कथा की ओर प्रेरित करने में सफल हो सके। यदि आश्रम में उन्हें अपने कुल की शिक्षा नहीं मिली होती तो रामकथा का गायन कैसे कर पाते? फिर जन-जन तक रघुकुल का प्रताप कैसे संचारित होता? एक बार दोनों भाइयों ने महर्षियों की मंडली में महात्माओं के समीप बैठकर रामायण का गान किया। उसे सुनकर मुनियों के नेत्रों में आँसू भर आए थे। एक दिन लव और कुश ने अयोध्या की गलियों और सड़कों पर रामायण के श्लोकों का गायन किया। जब उन पर श्रीराम की दृष्टि पड़ी तो उन्होंने अपने घर बुलाकर उन्हें सम्मानित किया। दोनों भाइयों ने आदि से अंत तक रामायण महाकाव्य का गान श्रीराम की सभा में किया। श्रीराम के वंश की प्रशस्ति और राज्य की आर्थिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का वर्णन रामदरबार में लवकुश के मुख से सुना। यह वाल्मीकि की शिक्षा का परिणाम था। मुनि ने अपने कुटुम्ब को युगानुरूप प्रबोधित कर देश को यशस्वी बनाया।

कुटुम्ब की उन्नति ऋषि-मुनियों, गुरुओं, अतिथियों, वरिष्ठ जनों के निरंतर शुभागमन से होती है। वहाँ प्रणाम के पश्चात परिवार की कुछ समय के लिए उपस्थिति आवश्यक है। आगंतुक अपने यात्रा अनुभव के साथ कुछ न कुछ ऐसा कह जाते हैं जो मार्गदर्शक होता है। जीवन

को सुफल और सार्थक बनाने में मदद करता है। निरंतर आर्थिक स्थितियों पर चिंतन तथा उसी हेतु कार्य करते रहने की चिंता कथा, वार्ता के श्रवण और चिंतन में बाधक बनती है। अर्थ चिंतन का भी परिवार प्रबोधन की परंपरा में स्थान है। जिस वाल्मीकि रामायण की चर्चा अभी की गई है उसी ग्रंथ में स्वयं श्री राम भरत से अयोध्या की आर्थिक स्थिति के बारे में चर्चा करते हैं।

पूरे देश को जोड़ने में चारों धामों, द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथा बावन शक्तिपीठों की बहुत बड़ी भूमिका है। जब इन चारों धामों की स्थापना नहीं हुई थी उससे बहुत पहले ऋषियों ने नदियों तथा उसके किनारे स्थित तीर्थों के महत्त्व को समझाया। वहाँ ठहरने, यज्ञ, तप करने तथा प्रदक्षिणा के महत्त्व को स्थापित किया। घर-घर में लोगों ने इस ज्ञान की चर्चा की। उसके कारण पवित्र तालाबों से लेकर कुंभ स्नान के लिए शिक्षित जनता तो गई है, उससे भी अधिक ग्रामीण कृषक परिवार गए और निरंतर जा रहे हैं। जन-जन तक देश के तीर्थ स्थानों के प्रति पवित्र भाव पहुँचाने की कोई न कोई पद्धति तो रही होगी। गाँव-गाँव में होने वाली कथा-वार्ताओं ने भारतीयता के संस्कार जागृत किए। किसी शिक्षित जन या साधु-संन्यासियों से सुनकर यह कथा विभिन्न अवसरों पर परिवार में सुनाई जाती थी। खेत-खलियान, बगीचे, गर्मी के दिनों में घरों में, पेड़ों के नीचे भारत और भारतीय संस्कृति पर चर्चा होती रही है। इस विचार-विमर्श में ज्ञान की परीक्षा भी होती थी। अंग्रेजों के कुशासन में शिक्षा की स्थिति बदतर हो गई। रामचरित मानस को अर्थ सहित पढ़ लेने वाली लड़कियों को 1950-60 तक शिक्षित माना जाता था। उन लड़कियों तथा बहुओं ने घर की सासुओं-ननदों को रामचरित मानस की कथा सुनाई। परिवार में रामकथा ने

संस्कारित पीढ़ियों को खड़ा किया।

महाभारत के ऋषि अवसर पाते ही भारत बोध की चर्चा विभिन्न प्रसंगों में करते हैं। उनसे अपने प्रश्नों को पूछने में कोई भी पात्र संकोच नहीं करता। महाभारत के 'वनपर्व' में द्रौपदी युधिष्ठिर को कर्म की शिक्षा देती है। श्रीकृष्ण ने कर्म की शिक्षा का उपदेश अर्जुन को युद्ध के मैदान में दिया था। वही शिक्षा अलग शब्दावली में द्रौपदी ने पांडवों को युद्ध से बहुत पहले ही दी थी। दौपदी को यह शिक्षा उसके परिवार में पिता की गोद में बैठकर मिली थी। वह युधिष्ठिर से कहती है कि उसके पिताजी ने घर में एक विद्वान ब्राह्मण को बुलाया था। उन्होंने बृहस्पति की बताई हुई नीति का प्रतिपादन उनके पिताजी से किया था। उस ब्राह्मण ने भाइयों को भी कर्म की वह शिक्षा दी थी। उस समय वह किसी कार्य से पिताजी के पास आई थी। द्रौपदी को यह वार्ता अच्छी लगी और वह अपने पिताजी की गोद में बैठ गई। उस ब्राह्मण देवता ने द्रौपदी को भी अपना उपदेश दिया। बाल्यावस्था में पिता की गोद में बैठकर सुनी हुई कथा और उपदेश से द्रौपदी अपने निराश, ज्ञानी, धुरंधर पाँच पतियों को प्रेरित कर रही है। यह द्रुपद के कुटुम्ब प्रबोधन की पद्धति थी। विद्वानों के साथ पुत्र-पुत्रियों की उपस्थिति में ज्ञान चर्चा कर उन्हें योग्य बनाया। द्रौपदी युधिष्ठर से कहती है कि मनु का यह सिद्धांत है कि कर्म करना ही चाहिए। निश्चेष्ट बैठने वाला पराभव को प्राप्त करता ही है। वह कहती है कि कर्म करने वाले पुरुष को प्राय: फल की प्राप्ति होती ही है। जो आलसी हैं, अच्छी तरह से कर्त्तव्य का पालन नहीं करते उन्हें फल की सिद्धि नहीं होती। 'प्राय:' इसलिए

भारतीयों ने सहस्रों वर्षों में कभी भी अपने तीर्थ स्थानों को विस्मृत नहीं किया। शासनज्ञान न होने पर भी वाचिक परंपरा में इसे स्मृति का हिस्सा बनाए रखा। परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के आक्रमणों, दीनताओं और जजिया जैसे करों के बावजूद तीर्थाटन का क्रम बनाए रखा। ये यात्राएँ धार्मिक तो भी हों, भारतबोध की थीं, सांस्कृतिक पहचान की थीं। तीर्थयात्रा से लौटकर आने वाले का सम्मान देवताओं की तरह करना चाहिए। यह ज्ञान कुटुम्ब प्रबोधन से प्राप्त हुआ। तीर्थयात्री की धूल समस्त पापों का नाश करती है, यह धार्मिक भाव है, उसके यात्रा प्रसंग का संस्मरण भारत को जानने की ललक पैदा करने का उपक्रम है।

कहा कि फल की सिद्धि में पुरुषार्थ के अलावा भी दो कारण हैं – प्रारब्ध और ईश्वर की कृपा। पुरुषार्थ करने पर भी फल की प्राप्ति न हो तब भी निराश नहीं होना चाहिए। द्रौपदी का कथन है –

कुर्वतो नार्थसिद्धिर्मे
भवतीति ह भारत।
निर्वेदो नात्र कर्तव्यो
द्वावन्यो ह्यत कारणम्।।

किसी भी कार्य को कुशलतापूर्वक करना चाहिए। इसके लिए भी तैयारी करनी पड़ती है। कार्य के परिणाम को देखकर योग्य और अयोग्य, कुशल और अकुशलकर्ता का निर्णय हो जाता है। यह ज्ञान भी द्रौपदी अपने पतियों को दे रही है। प्रबोधन का यह तरीका कितना मौलिक और शाश्वत है :

कुशलेन कृतं कर्म
कर्त्रा साधु स्वनुष्ठितम्।
इदं त्वकुशलेनेति
विशेषादुपलभ्यते।।

महाभारत के 'वनपर्व' में 'तीर्थयात्रा पर्व' है। कुटुम्ब प्रबोधन की शाश्वत परम्परा को समझने के लिए यह उपयोगी है। युधिष्ठिर ने नारद से पूछा कि जो मनुष्य तीर्थयात्रा के लिए तत्पर होकर पृथ्वी की परिक्रमा करता है, उसे किस प्रकार के फल की प्राप्ति होती है ? उसे बतलाइए। नारद ने इस प्रश्न के उत्तर में अनेक तीर्थों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। उन्होंने अपने उत्तर देने के क्रम में भीष्म और पुलस्त्य ऋषि के संवाद के माध्यम से विषय को रखा है। यह भारत की संवाद-कला है जो विभिन्न रूपों में आकर प्रसंग को रोचक तथा पुष्ट बनाती है। भीष्म के पूछने पर पुलस्त्य ने अनेक तीर्थों का वर्णन किया। तीर्थ फल की चर्चा की। तीर्थ में रहने की विधि को बतलाया। यह पूरा वर्णन प्रत्येक भारतीय को तीर्थ यात्रा के लिए प्रेरित करता है। महर्षि व्यास ने यह संपूर्ण उपक्रम नदियों, पर्वतों के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न करने के लिए किया है। इसलिए भारत केवल मनुष्यों के समूह से नहीं बनता है। इस देश के लिए प्रकृति देव तुल्य नहीं, स्वयं देव है। अनेक प्रकार की भीषण समस्याओं और 143 करोड़ की जनसंख्या के बावजूद जो प्रकृति सुरक्षित है, संरक्षित है, वह इसी पूज्यता के कारण है। बहुत कम जन संख्या और अधिक क्षेत्रफल वाले देश जिन प्राकृतिक समस्यों से जूझ रहे हैं, उन्हें भी हम जानते और समझते हैं। उनकी संस्कृति ने विचार के केंद्र में मात्र मनुष्य को रखा है। भारत ने अपने चिंतन के क्षेत्र में संपूर्ण सृष्टि को रखा है। पुलस्त्य ऋषि ने पुष्कर तीर्थ, महाकाल तीर्थ, नर्मदा नदी, चंबल नदी, प्रयागतीर्थ, सरस्वती नदी, भद्रतुंगतीर्थ, रेणुकातीर्थ, वितस्तातीर्थ, वडवातीर्थ, देविकातीर्थ, कामतीर्थ, राशयानतीर्थ, कुरुक्षेत्र, सोमतीर्थ, शौवतीर्थ, यक्षिणीतीर्थ, परशुराम कुण्ड, कपिला तीर्थ, सूर्य तीर्थ, सुतीर्थ, काशी तीर्थ, दशाश्वमेघ तीर्थ, मानुष तीर्थ, सप्तर्षि कुण्ड, वामनतीर्थ, नैमिषारण्य, ब्रह्मतीर्थ, विश्वामित्र तीर्थ, सोमतीर्थ, शाकम्भरी तीर्थ, प्रयाग तीर्थ, मार्कण्डेय तीर्थ, गया तीर्थ, धैनुतीर्थ, अहल्या तीर्थ, गौतम आश्रम, गाड़की स्नान, विशल्या नदी स्नान, कंपना नदी स्नान, सोमपद तीर्थ,, कोशी नदी स्नान, नन्दिनी तीर्थ, गंगा सागर संगम तीर्थ, अयोध्या तीर्थ, दण्डकारण्य तीर्थ, चित्रकूट तीर्थ आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। परिवारों में उसकी चर्चा होती रही है।होती रहनी चाहिए। इस पर्व में संपूर्ण देश के तीर्थों का वर्णन है।

भारतीयों ने सहस्त्रों वर्षों में कभी भी अपने तीर्थ स्थानों को विस्मृत नहीं किया। शासन ज्ञान न होने पर भी वाचिक परंपरा में इसे स्मृति का हिस्सा बनाए रखा। परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के आक्रमणों, दीनताओं और जजिया जैसे करों के बावजूद तीर्थाटन का क्रम बनाए रखा। ये यात्राएँ धार्मिक तो भी हों, भारतबोध की थीं, सांस्कृतिक पहचान की थीं। तीर्थयात्रा से लौटकर आने वाले का सम्मान देवताओं की तरह करना चाहिए। यह ज्ञान कुटुम्ब प्रबोधन से प्राप्त हुआ। तीर्थयात्री की धूल समस्त पापों का नाश करती है, यह धार्मिक भाव है, उसके यात्रा प्रसंग का संस्मरण भारत को जानने की ललक पैदा करने का उपक्रम है। कुटुम्ब प्रबोधन की परम्परा शिथिल होने से मन के भाव संकुचित हुए और स्थानीयता प्रबल हुई। संपूर्ण पृथ्वी परिवार है, इस पंक्ति को बोलने वाले कुछ लोगों तक सीमित होते चले गए। आर्ष ग्रंथों ने कथाएँ सुनाने और हृदयंगम कर अनुकरण करने के लिए दी है। कुटुम्ब प्रबोधन भारतीय जीवन पद्धति के सातत्य और दुधर्ष संघर्षों के बीच अविचल खड़े रहने के लिए प्रेरणा देने हेतु आवश्यक है। ❑

पारस्परिक निष्ठा से बनता है परिवार

(संस्कृत साहित्य में कुटुम्ब)

शास्त्री कोसलेन्द्रदास
अध्यक्ष - दर्शन एवं योग विभाग, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

विश्व का सर्वाधिक पुरातन संस्कृत साहित्य व्यष्टि एवं समष्टि, दोनों पक्षों में अपना आग्रह रखता है। जहाँ संस्कृत साहित्य ने व्यक्ति के एकल अस्तित्व को मान्यता प्रदान करने के लिए 'एकोह्म बहुस्याम' जैसे वैदिक सूत्र प्रदान किए हैं, वहीं इसमें मानव का मानव के प्रति सौहार्द, सद्व्यवहार, सहयोग, सह-अस्तित्व, सहानुभूति और समानता जैसे मूल्यों की भी प्रतिष्ठा की गई है। ऋग्वेद का कथन है -

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा
स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा
वाचं वदत भद्रया॥

भाई, भाई से द्वेष न करें और बहन, बहन से। वे आपस में प्रिय लगने वाली वाणी ही बोलें।

संस्कृत साहित्य के अनुसार परिवार के लिए कुटुम्ब शब्द है, जो अपने आप में एक पवित्र संस्था है। यह व्यक्ति को इस संसार से सकारात्मक रूप से प्रत्यक्षीकृत कराने में अपना महनीय योगदान निभाती है। संस्कृत साहित्य के अनुसार ''परिवार परस्पर संबंधों का एक समायोजित गठबंधन है, जो परस्पर एक दूसरे के अस्तित्व का सम्मान, आत्मकर्तव्यों का निर्वहन, सामाजिक दायित्व का परिपालन एवं जनकल्याण की भावनाओं के विस्तार के रूप में ग्रहण किया जाता है।''

सामान्यतः परिवार की मान्यताएँ सामाजिक मान्यताओं से बहुत मिली-जुली होती हैं। परिवार को जिस समाज द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है, उस समाज के संस्कार, उसका चिंतन, उसके आचार-विचार, उसके रहने के तरीके, उसका परिवेश, उसके समायोजन के तरीके, उसके सांस्कृतिक एवं कलात्मक पक्ष पारिवारिक मान्यताओं को सीधा प्रभावित करते हैं। तथापि ऐसे कुछ उदाहरण हैं जो समाज से विपरीत जाकर के भी कुछ ऐसे आदर्शों की स्थापना कर पाए हैं, जिनके द्वारा वह समाज स्वयं उपकृत हुआ है।

आज जब युगधर्म अनुकूल मूल्यों में सकारात्मक परिवर्तन आ रहा है। समाज में विघटन ज्यादा देखने को मिल रहा है, ऐसे में संयुक्त परिवार की अवधारणा भी बहुत कुछ हद तक प्रभावित हुई है। संयुक्त परिवार अब सिमटकर एकल परिवारों में परिवर्तित होने लग गए हैं परंतु इससे यह कह देना किसी भी तरीके से उपयुक्त नहीं होगा कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में अथवा उसके मनोवैज्ञानिक पक्षों में परिवार का योगदान कम होता है। संस्कृत साहित्य में निहित पारिवारिक मूल्यों में परिवार संबंधी मनोवैज्ञानिक मूल्यों का सकारात्मक रूप से हमारे ऋषि-मुनियों ने हमारे वैदिक और

पौराणिक साहित्य में बहुत सही रूप में समावेश किया था। परिवार को आदर्श का केंद्र बताते हुए बड़ों का सम्मान एवं उनके विचारों का अभिवादन, व्यक्तित्व की पूर्णता में सहायक होते हैं। यह हमारे मनीषियों ने बताते हुए लिखा भी है। मनुस्मृति कहती है –

अभिवादनशीलस्य नित्वं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

जो व्यक्ति अपने से बड़ों का नित्य अभिवादन करता है, उन्हें उनके व्यक्तित्व के अनुरूप समुचित सम्मान प्रदान करता है, ऐसा व्यक्ति आयु, विद्या यश और बल, इन चारों गुणों को सहज रूप से प्राप्त कर लेता होता है। यह श्लोक इंगित करता है कि किसी भी पारिवारिक व्यवस्था में पूर्ववर्ती-वरिष्ठ सदस्यों का सम्मान, उनके विचारों का सम्मान, उनके अस्तित्व के प्रति आस्था, उनकी मान्यताओं का स्वीकरण निश्चित रूप से उस परिवार में सदस्यों की सामंजस्य क्षमता को बढ़ा देता है।

संस्कृत साहित्य के अनुसार किसी भी व्यक्ति पर अनुवांशिकता एवं वातावरण का अत्यंत प्रभाव रहता है क्योंकि ''परिवार किसी संबंध के मान्य सिद्धांतों के आधार पर कुछ व्यक्तियों का समूह है और उन व्यक्तियों में आवश्यक रूप से अनुवांशिकता में समानता होना स्वाभाविक है। परिवार के संस्कार, आचार-व्यवहार, रूप, रंग शारीरिक संरचना, लगभग समान होने का कारण अनुवांशिकता ही है। एक परिवार की एक अनुवांशिकता को वहन करने वाले व्यक्तियों में एक जैसे शारीरिक संरचना का होना निश्चित होता है। प्रायः देखा जाता है कि जैसा माता-पिता का शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक संरचना होती है, वैसी ही उनके संततियों की शारीरिक संरचना भी होती है। हमारा परिवार हमारी अनुवांशिकता का वाहक होता है। अतः संस्कृत साहित्य के अनुसार जो लोग सदाचरण एवं योग व्यायाम का ध्यान रखते हुए जीवनचर्या का पालन करते हैं। निश्चित रूप से उनके अनुवांशिक गुण भी सकारात्मक रूप से उभर करके आते हैं। संस्कृत साहित्य योग, व्यायाम, अच्छी दिनचर्या एवं नैतिक मूल्यों के अनुरूप जीवन जीने की बात करता है। इसकी शिक्षाओं में भी यह निहित है, गीता (2.50) का श्लोक पढ़िए –

बुद्धियुक्तो जहातीह
उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व
योगः कर्मसु कौशलम्।।

प्रायः देखा गया है कि एक स्वस्थ माता-पिता की संतान स्वस्थ होती है। माता-पिता के सभी सकारात्मक गुण अपनी संतति में सकारात्मक रूप से संप्रेषित कर दिए जाते हैं। आरुणि और उपमन्यु, श्रीराम, महात्मा भरत, धर्मराज युधिष्ठिर, गाण्डीवधारी अर्जुन और भीमसेन जैसे अनेक उदाहरण संस्कृत साहित्य में देखने को मिलते हैं।

वातावरण पारिवारिक सुदृढ़ता, पारिवारिक एकता, परिवार में रहने वाले लोगों की मानसिकता का निर्धारण करने में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। जिन घरों का वातावरण जितना स्वास्थ्यवर्धक, नैतिक, चारित्रिक मूल्यों से युक्त एवं स्वच्छ और कल्याणकारी होता है। लगभग उन परिवारों में एक सकारात्मक उन्नति परिलक्षित होती है। संस्कृत साहित्य में अनेक ऐसे परिवारों, वंशों और कुलों का परिचय निहित है, जिन्होंने नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों के परिपालन में बड़े-बड़े उदाहरण संसार के समक्ष प्रस्तुत किए। रामायण में वर्णित रघुकुल और महाभारत में वर्णित यदुकुल तथा कुरुवंश तत्कालीन पारिवारिक पर्यावरण के अनुकूल उदाहरण है। भगवान् वाल्मीकि 'रामायण' में लिखते हैं –

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो
नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो
द्युतिमान् धृतिमान् वशी।।

संस्कृत साहित्य के अनुसार आवश्यक है कि परिवारों का वातावरण हमेशा सकारात्मक, मनोरंजक और चारित्रिक मूल्यों को उन्नयन प्रदान करने वाला हो। जिससे परिवार के सदस्यों के बीच परस्पर एक-दूसरे के अस्तित्व, संबंध पद का सम्मान और सौहार्द बना रहे।

यह पारिवारिक संयुक्तता का ही प्रभाव रहा है कि प्राचीन भारत में संयुक्त परिवार एवं दत्तक प्रथा के कारण इच्छापत्रों (वसीयतनामों) के व्यवस्थापन की परम्परा न चल सकी। कौटिल्य, बृहस्पति, कात्यायन आदि ने लेख्यपत्रों (Documents) के प्रकारों में कोई ऐसा लेख्य प्रस्तुत नहीं किया, जिसे हम आधुनिक 'विल' के अर्थ में ले सकें किन्तु

ऐसी बात नहीं है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व ऐसी भावना का उदय लोगों के मन में नहीं हुआ था। मुसलमानों में यह प्रथा थी, और उनके सम्बन्ध से इस भावना का उदय अंग्रेजों से पहले ही भारत में होना स्वाभाविक था, पर संस्कृत काव्यों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं कि मरते समय व्यक्ति मौखिक या लिखित रूप में अपने उत्तराधिकारियों से सम्पत्ति के विषय में कुछ अवश्य कहता था। आठवीं शताब्दी के प्रथम भाग में काश्मीर के राजा ललितादित्य ने राजनीतिक इच्छापत्रता का परिचय दिया था, ऐसा 'राजतरंगिणी' (341-159) से झलकता है। कात्यायन ने आधुनिक 'विल' की ओर संकेत किया है - यदि धार्मिक कृत्य के लिए कोई व्यक्ति स्वस्थ रूप या आर्त (रोगी) के रूप में दान करने का वचन देता है तो उसे बिना दिए मर जाने पर उसके पुत्र को वह दान करना चाहिए।

जिन लोगों का विश्वास आधुनिक भावनाओं एवं अंग्रेजी शिक्षा के कारण हिल उठा है या टूट चुका है या जिन लोगों का 'कर्म' या 'पुनर्जन्म' में अटल विश्वास है, उन्हें एक बात स्मरण रखनी है। बहुत प्राचीन काल से हमारे तात्त्विक दृष्टिकोणों एवं धारणाओं के अन्तर्गत ऋषियों, देवों एवं पितरों से सम्बन्धित तीन ऋणों की मोहक धारणा रही है। पितृ-ऋण पुत्रोत्पत्ति से चुकता है क्योंकि पुत्र पितरों को पिण्ड देता है, जो एक अतिव्यापक एवं विशाल धारणा है। गया (बिहार) में तिलयुक्त जल के तर्पण एवं पिण्डदान के समय जो कहा जाता है, उससे बढ़कर कौनसी अन्य उच्चतर भावना किस क्षेत्र और किस धर्म के लोगों में होगी? जहाँ कहा गया है - ''मेरे वे पितर लोग, जो प्रेतरूप में हैं, तिलयुक्त यव (जौ) के पिण्डों से तृप्त हों और प्रत्येक वस्तु, जो ब्रह्मा से लेकर तिनके तक चर हो या अचर, हमारे द्वारा दिए गए जल से तृप्त हों।'' यदि हम इस महान् उक्ति के तात्पर्य को अपने वास्तविक आचरण में उतारें तो यह सारा विश्व एक कुटुम्ब हो जाए। अत: युगों से संचित जटिल बातों को त्यागते जाते हुए आज के हिन्दुओं को चाहिए कि वे धार्मिक कृत्यों एवं उत्सवों के, जिन्हें लोग भ्रामक ढंग से समझते-समझाते आ रहे हैं, भीतर पड़े हुए सोने को न ठुकराएँ। आज भी बहुत-से विद्वान् महानुभाव लोग अपने माता एवं पिता के प्रति श्रद्धा-भावना को अभिव्यक्त करते हुए श्राद्ध-कर्म करते हैं, जिसमें परिवार की एकता और अखण्डता बने रहने का महाभाव छिपा हुआ है।

यह भी जानने की बात है कि पति और पत्नी की अविभक्तता केवल धार्मिक कृत्यों (श्रौत एवं स्मार्त) तथा पुण्यफल में होती है, न कि अन्य कृत्यों या सम्पत्ति के विषय में। पुत्र के व्यक्तिगत ऋण के लिए पिता देनदार नहीं होता, न ही पत्नी के ऋण के लिए पति, उसी तरह पति तथा पुत्रों के ऋण के लिए पत्नी देनदार नहीं होती किन्तु यदि ऋण कुटुम्बार्थ लिया गया हो तो पुत्र, पति या पत्नी एक-दूसरे के ऋण के उत्तरदायी होते हैं। मृत पति की पत्नी को ऋण चुकाना पड़ता है। यदि वह विधवा पुनर्ग्रहण (दूसरा विवाह) कर ले तो भी उसे ऋण चुकाना चाहिए। पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है इसलिए उसको ग्रहण करने वाले को ऋण का देनदार माना है। नारद (6/1) जब अनेक व्यापारी अथवा अन्य लोग (यथा अभिनेता, संगीतज्ञ या शिल्पकार आदि) परस्पर मिलकर कोई व्यापार करते हैं तो वह कार्य या व्यवसाय सहकारिता, सम्भूयकारिता या सम्भूयसमूत्थान की संज्ञा पाता है।

परिवारों को जोड़े रखने के लिए विवाह-संस्कार अति प्राचीन है, जो धर्म, संतान और रति सुख का आधार है। विवाह पर स्मृतियों ने व्यापक विचार किया। विवाह का महत्त्व था दो व्यक्तियों को आत्मनिग्रह, आत्म-त्याग एवं परस्पर सहयोग की भूमि पर लाकर समाज को चलते जाने देना। इसी कारण ऋषियों ने सामाजिक व्यवस्था एवं चारित्रिक शुचिता के प्रति सचेत होकर विवाह संस्था को प्रतिष्ठित किया था, जो अनेक वैज्ञानिक कारणों से आज तक चली आ रही है।

संस्कृत भाषा में लिखे साहित्य में विवाह-संबंधी बहुत-से शब्द मिलते हैं, जो विवाह संस्कार की प्राचीनता की ओर संकेत करते हैं। इनमें प्रमुख हैं - उद्वाह (कन्या को उसके पितृ-गृह से उच्चता के साथ ले जाना), विवाह (विशिष्ट ढंग से कन्या को अपनी पत्नी बनाने के लिए ले जाना) एवं पाणिग्रहण (कन्या का हाथ पकड़ना)। वैदिक संहिताओं में प्राय: विवाह शब्द ही उल्लिखित है। दक्षिण भारत में विवाह के लिए एक सुंदर शब्द है कल्याणोत्सव। विवाह शब्द ही आम बोलचाल में अब 'ब्याह' बन गया है।

ऋग्वेद के मतानुसार विवाह का उद्देश्य था गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा संतानोत्पत्ति करना। शास्त्रों में स्त्री को 'जाया' कहा गया है, क्योंकि पति स्वयं ही पत्नी के गर्भ से संतान के रूप में जन्म ग्रहण करता है। ऐतरेय-ब्राह्मण का कहना है कि

पत्नी पति की अर्धांगिनी है। जब तक व्यक्ति विवाह नहीं कर लेता तब तक वह संतानोत्पत्ति नहीं कर सकता, परिणामत: वह पूर्ण नहीं हो पाता। स्पष्ट है कि धर्मसंपत्ति, संतान और रति (यौन तथा अन्य स्वाभाविक आनंदोत्पत्ति) ये तीन विवाह-संबंधी प्रमुख उद्देश्य स्मृतियों एवं निबंधों ने माने हैं।

शास्त्रों ने सपिंड (एक ही परिवार और गोत्र के बीच) विवाह पर प्रतिबंध लगाया है, जिसके दो कारण हैं। प्रथम, यदि सन्निकट संबंधी आपस में ही विवाह करेंगे तो उनके दोष कई गुना होकर उनकी संतानों में बढ़ जाएंगे। दूसरा, यदि सन्निकट लोगों में ही आपस में विवाह संबंध स्थापित होने लगेंगे तो गुप्त प्रेम की परम्पराएँ फैल जाएंगी, जिससे समाज में अनैतिकता बढ़ जाएगी। कन्याओं के लिए, जो एक ही घर में कई सन्निकट एवं दूर के संबंधियों के साथ रहती है, उनके लिए वर पाना कठिन हो जाएगा। इसी कारण माता और पिता के गोत्रों को टालकर विवाह करने की सामाजिक एवं वैज्ञानिक परंपरा चल पड़ी थी।

विवाह-विच्छेद या तलाक के संबंध में धर्मशास्त्र में कुछ भी प्राप्त नहीं है। मनुस्मृति ने लिखा है कि पति-पत्नी की पारस्परिक निष्ठा आमरण चलती रहनी चाहिए, यही पति एवं पत्नी का परम धर्म है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अवश्य कुछ ऐसे व्यावहारिक नियम हैं जो विवाह-विच्छेद पर प्रकाश डालते हैं। उसके अनुसार यदि पति नहीं चाहता तो पत्नी को छुटकारा नहीं मिल सकता, इसी प्रकार यदि पत्नी नहीं चाहती तो पति को भी छुटकारा नहीं मिल सकता। यदि दोनों में पारस्परिक विद्वेष है तो आपस में एक-दूसरे से छुटकारा संभव है। इस प्रकार कौटिल्य के कथन से यह स्पष्ट है कि यदि पति या पत्नी में से एक भी विच्छेद नहीं चाहता तो दूसरे को भी विवाह से छुटकारा नहीं मिल सकता।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसका जन्म, वृद्धि विकास एवं जीवनपर्यंत सभी क्रियाएँ किसी सामाजिक परिस्थितियों में ही घटित होती हैं परंतु समाज की जिस छोटी इकाई से वह सबसे पहले प्रत्यक्षीकृत होता है, वह परिवार है। परिवार वह संस्था है जो मनुष्य में सबसे पहले सामाजिकता का उद्‌भव और विकास कराती है। संस्कृत साहित्य के अनुसार मनुष्य में सामाजिकता के लिए परिवार अत्यंत उत्तरदायी संस्था है। परिवार की मान्यताएँ, परिवार का सामाजिक परिवेश, परिवार की आर्थिक स्थिति, परिवार की सामाजिक स्थिति, परिवार की वैचारिक स्थिति का पर्याप्त प्रभाव मनुष्य की सामाजिकता एवं उसके पक्षों पर पड़ता है। अगर कोई व्यक्ति पारिवारिक रूप से सुदृढ़ है तो यह निश्चित रूप से निर्धारित किया जा सकता है कि उसकी सामाजिक स्थिति भी सुदृढ़ रहेगी। जैसा कि संस्कृत साहित्य में कहा गया है -

वाणी रसवती यस्य
यस्य श्रमवती क्रिया।
लक्ष्मी: दानवती यस्य
सफलं तस्य जीवनम्।।

परिवारों को जोड़े रखने के लिए विवाह-संस्कार अति प्राचीन है, जो धर्म, संतान और रति सुख का आधार है। विवाह पर स्मृतियों ने व्यापक विचार किया। विवाह का महत्त्व था दो व्यक्तियों को आत्मनिग्रह, आत्म-त्याग एवं परस्पर सहयोग की भूमि पर लाकर समाज को चलते जाने देना। इसी कारण ऋषियों ने सामाजिक व्यवस्था एवं चारित्रिक शुचिता के प्रति सचेत होकर विवाह संस्था को प्रतिष्ठित किया था, जो अनेक वैज्ञानिक कारणों से आज तक चली आ रही है।

संस्कृत साहित्य में ऐसे कई उदाहरण है जिसमें व्यक्ति के परिवार के संस्कारों का पर्याप्त प्रभाव उस व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ा एवं उसके द्वारा सामाजिक पक्षों को समुचित रूप से प्रभावित किया गया। रामायण इस विषय में महनीय उदाहरण प्रस्तुत करती है कि राम अपने पिता से ही वचन पालन के गुणों को सीख कर, पिता के दिए हुए वचन को निभाने के लिए, अपने परिवार की कुल मर्यादाओं के अनुरूप 14 वर्ष के वनवास को स्वीकार करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण यदुकुल में जन्म लेने के कारण अपने परिवार के गोचरण संबंधी आचरण को निभाते हुए गायों को चराने जाते हैं। भगवान् बुद्ध राजकुल में पैदा होने के पश्चात् भी इस संसार की सांसारिकता से ऊपर उठकर के निर्वाण को प्राप्त होते हैं। ये उदाहरण व्यक्ति के सामाजिक मनोनयन एवं मनोसामाजिक निर्धारण के लिए पारिवारिक व्यवस्था को बहुत हद तक स्वीकार करती है। ऋग्वेद का 'संज्ञान-सूक्त' व्यक्ति के समायोजन एवं परस्पर सामाजिकता को एवं समदृष्टि को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त उदाहरण देते हुए कहता है कि -

समञ्जन्तु विश्वेदेवा
समापो हृदयानि नो।
संमातरिश्वा सन्धाता
समुदेष्टी ददातु नौ।।

रामायण और महाभारत परिवारों की कथा को ही प्रतिष्ठित करने वाले ऐतिहासिक ग्रंथ हैं, जो मानव समाज को अनुशासित रहते हुए पारिवारिक एकता से जोड़ते हैं। भारत की उदात्त संस्कृति में तो सारा संसार ही कुटुम्ब है, जिसकी घोषणा 'पंत्रतंत्र' में पण्डित विष्णु शर्मा ने हजारों साल पहले ही कर दी थी - वसुधैव कुटुम्बकम् अर्थात् पूरा संसार ही एक परिवार है। इसमें सब अपने हैं, कोई पराया नहीं। जब सब के प्रति अपनत्व जग उठे तो एक परिवार स्थापित होता है, जो विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। ❑

संयुक्त परिवार की व्यवस्था और इतिहास

डॉ. संजय सिंह पठानिया
एसोसिएट प्रोफेसर ज्योग्राफी
राजकीय स्नातकोत्तर कॉलेज,
धर्मशाला, जि. कांगड़ा
(हिमाचल प्रदेश)

भारत के समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली बहुत प्राचीन समय से ही विद्यमान रही है। विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, जातियों में सम्पत्ति के अधिकार, विवाह और विवाह विच्छेद आदि की प्रथा की दृष्टि से अनेक भेद पाए जाते हैं, किंतु फिर भी 'संयुक्त परिवार' का आदर्श सर्वमान्य है। कपाड़िया ने संयुक्त परिवार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि एक ऐसा व्यक्तियों का समूह जो आमतौर पर एक ही छत के नीचे रहते हैं, एक ही चूल्हे पर पका भोजन करते हैं, सांझी संपत्ति रखते हैं, परिवार की सब पूजा में भाग लेते हैं तथा एक दूसरे से एक विशेष प्रकार के नातेदारी संबंधों से जुड़े होते हैं।

संयुक्त परिवार तुलनात्मक रूप से बृहत् परिवार है। यह दो या दो से अधिक प्राथमिक परिवारों से बना एक समूह है जिसके सदस्यों का अपना एक सामान्य निवास होता है तथा जो धर्म, कर्म, अर्थ, शासन, प्रबन्ध तथा भोजन आदि की दृष्टि से बहुत कुछ संयुक्त होते हैं। संयुक्त परिवार को समाज का अहम स्तंभ माना गया है, जहाँ लोग एकसाथ रहकर आपस में समय व्यतीत करते हैं। आज से लगभग चालीस वर्ष पहले संयुक्त परिवार में एक ही रसोई होती थी तथा सब मिलकर साथ-साथ प्रेम से भोजन किया करते थे। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार का विघटन होता जा रहा है। इस विघटन के कारण दादा तथा दादी शनैः शनैः परिवार से दूर होते जा रहे हैं। अब यह सब व्यवस्था आधुनिकता के चक्र की शिकार हो गई है। परिवारों में परस्पर प्रेम तथा त्याग का विलोपन होता जा रहा है।

इराबती कर्वे के अनुसार ''एक संयुक्त परिवार ऐसे व्यक्तियों का एक समूह है जो सामान्यः एक ही घर मे रहते हैं, जो एक ही रसोई मे बना भोजन करते हैं, जो सम्पत्ति के सम्मिलित स्वामी होते हैं तथा जो सामान्यतः पूजा मे भाग लेते हैं और जो किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते हैं।'' आई. पी. देसाई के अनुसार ''हम उस गृह (घर) को संयुक्त परिवार कहते हैं, जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों के सदस्य रहते हैं और जिसके सदस्य एक दूसरे से संपत्ति, आय और पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों द्वारा सम्बद्ध हो।'' संयुक्त परिवार, वह परिवार जिसमें एकरेखीय वंश समूह के सदस्य अपने जीवनसाथी और संतानों के साथ एक ही घर में रहते हैं। संयुक्त परिवार एकल परिवार (माता-पिता और आश्रित बच्चे) का विस्तार है, और यह आम तौर पर तब बढ़ता है जब एक परिवार के बच्चे शादी के समय अपने माता-पिता का घर नहीं छोड़ते हैं बल्कि अपने जीवनसाथी को अपने साथ रहने के लिए लाते हैं।

इस प्रकार, एक पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार में एक वृद्ध व्यक्ति और उसकी पत्नी, उसके बेटे और अविवाहित बेटियाँ,

उसके बेटों की पत्नियाँ और बच्चे इत्यादि शामिल हो सकते हैं। मध्य पीढ़ी के एक व्यक्ति के लिए, संयुक्त परिवार से संबंधित होने का अर्थ है अपने वैवाहिक परिवार को अपने मूल परिवार में शामिल करना (यानी, जिसमें वह पैदा हुआ था)। संयुक्त परिवार के सदस्य भोजन एकत्र करने, व्यापार, भोजन तैयार करने और बच्चे के पालन-पोषण के सभी कार्यों को साझा करते हैं संयुक्त परिवार से आशय ऐसे परिवार से है जिसमें एक से अधिक युगल (दंपत्ति) होते हैं और अक्सर दो से अधिक पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते हैं।

संयुक्त परिवार की महत्ता और विघटन के कारक

समाज के कई बड़े संयुक्त परिवारों से मिलने पर एक बात सामने आती है कि इन परिवारों में व्यक्ति से ज़्यादा अहमियत परिवार की होती है। वहाँ व्यक्तिगत पहचान कोई विषय ही नहीं होता। परिवार में कुछ सामान्य अनुशासन होता है, जिनका परिवार के सभी सदस्यों को अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता है। समाजशास्त्री मानते हैं कि बड़े संयुक्त परिवारों को सही ढंग से चलाने के लिए लोगों को खुद से ज़्यादा परिवार को महत्त्वपूर्ण मानना पड़ता है। भारत के समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली बहुत प्राचीन है, यद्यपि इसके आंतरिक स्वरूप में बहुविवाह, उत्तराधिकार और संपत्ति के अधिकार के नियमों में, समयानुसार परिवर्तन होता रहा है। औद्योगिक क्रांति ने पाश्चात्य देशों में परंपरागत संयुक्त परिवार का स्वरूप ही भंग कर दिया है, जिसका कारण बढ़ते हुए यंत्रीकरण के फलस्वरूप व्यक्ति को परिवार से बाहर मिली आजीविका, सुरक्षा और उन्नति की सुविधाओं को कारण बताया जाता है। भारत में भी औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नई अर्थव्यवस्था और नये औद्योगिक तथा आर्थिक संगठनों का आरंभ होने के कारण परिवार संस्था का विघटन प्रारम्भ हो चुका है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि एकल परिवारों में पति-पत्नी के बीच छोटी-छोटी बातों पर अहम टकराने लगते हैं। उनके बीच के मनमुटाव को दूर करने के लिए उनके पास कोई तीसरा व्यक्ति नहीं होता है। अक्सर ऐसे मामलों में तलाक की स्थिति आ जाती है। जानकार मानते हैं कि तलाक के ज़्यादातर मामले एकल परिवारों से आते हैं। इसके अलावा आत्महत्या और मानसिक अवसाद से जुड़े ज़्यादातर मामले भी एकल परिवारों की देन हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अकेले रहने वाले व्यक्ति हमेशा एक अज्ञात डर से भयभीत रहते हैं और कई बार यह डर इतना बढ़ जाता है कि नतीजा आत्महत्या के रूप में सामने आता है।

इस विघटन के कारण दादा तथा दादी शनैः शनैः परिवार से दूर होते जा रहे हैं। घरों में दादा-दादी का होना आज के संदर्भ में बच्चों के लिए एक सुखद अनिवार्यता है। आर्थिक विषमताओं एवं उच्च स्तरीय जीवन जीने की लालसा ने घरों में तनाव एवं विषमताएँ पैदा कर दी हैं। घरों में जो एक सहज जीवन होता है उसमें शनैः शनैः विकृति एवं परायापन आते जा रहे हैं। एक दूसरे को सुखी देखकर जो चेहरे पर प्रफुल्लता होती है। वह कम होती जा रही है। आज के नवयुवक स्वतंत्र जीवन जीना चाहते हैं। घरों में सदस्य एक दूसरे के साथ बात-चीत, मनोविनोद, मंत्रणा तथा सक्रिय सहयोग के द्वारा अपने अनुभवों, क्षमताओं एवं योग्यताओं में जो वृद्धि कर सकते हैं वह संयुक्त परिवार में ही संभव है। दूसरों के अनुभवों से जो जानकारी मिलती है वह जीवन को दिशा प्रदान करती है। परस्पर वार्तालाप एवं स्नेहपूर्ण सद् व्यवहार परिवारों में सम्पन्नता की आधार शिलाएँ हैं। जहाँ परस्पर संवाद समाप्त हो जाता है वहाँ विनाश के बीज भी बिना प्रयास के उगने लगते हैं। अकेला आदमी ज्यादा लम्बी दूरी तय नहीं कर सकता है। जल्दी थक जायेगा और उसकी सहायता करने वाला कोई नहीं होगा। समय के साथ छोटी-मोटी विपत्तियाँ सब पर आती है जो अकेले आदमी को तोड़ सकती है। परिवार के सदस्य विपत्ति में बहुत याद आते हैं। काम भी वो ही आते हैं। परिवारों में वरिष्ठ नागरिकों का मार्गदर्शन कम होता जा रहा है। उनकी बातों पर नई पीढ़ी कम ध्यान देती है।

संयुक्त परिवार का इतिहास

आज से लगभग चालीस वर्ष पहले संयुक्त परिवार में एक ही रसोई होती थी तथा सब मिलकर साथ-साथ प्रेम से भोजन किया करते थे। उस भोजन का आनंद अलग ही था। घर में दादी या ताई रसोई का सारा काम अन्य सदस्यों के सहयोग से संभालती थी तथा उसका सारा दिन रसोई में ही बीतता था। परिवार में आनंद तथा एकात्मकता का वातावरण अत्यन्त ही उत्साह जनक था। अब यह सब व्यवस्था आधुनिकता के चक्र की शिकार हो गई है।

परिवारों में परस्पर प्रेम तथा त्याग का विलोपन होता जा रहा है। संयुक्त परिवार में सुरक्षा का उच्चतम स्तर बना रहता है। कोई न कोई घर में रहता ही है। घर कभी सूना नहीं रहता है।अब थोड़े दिनों के लिए बाहर जाने पर चिंता रहती हैं। असुरक्षा बढ़ी है। सम्पन्नता के कारण घरों में कीमती वस्तुओं की संख्या बढ़ी है तथा सामान इतना हो जाता है कि स्थान की कमी पड़ती है। सब लोग अपना-अपना अलग सामान जुटाते हैं। बहुत बार घरों में एक ही प्रकार की जरूरत से ज्यादा वस्तुएँ इकट्ठी हो जाती है। आधुनिकता ने जीवन स्तर को ऊँचा करने की दौड़ में चिंताएँ भी बढ़ा दी हैं। यदि तनाव से बचना हो तो साथ मिलकर रहने की जीवन-कला को पुनः प्रस्थापित करने की आवश्यकता है। सहनशीलता, मौन तथा परस्पर साहचर्य से थोड़ी जगह में अधिक लोग शान्ति से रह सकते हैं। आराम से सुखी रहना प्रमुख है, न कि अलग रहकर दुःखी रहना। मिल बाँट कर एक साथ रहने का आनंद अलग ही है। यदि छोटा बड़ों का आदर करे तथा बड़े छोटे का ध्यान रखें तो जीवन का आनंद बहुत विस्तार ले सकता है। छोटी-छोटी बातों पर लड़ना एक दूसरे की कमियाँ देखना, परिवार की उन्नति का प्रयास नहीं करना, अपनी ही सुख सुविधाओं का विशेष ध्यान रखना, आमदनी से अधिक खर्च कर शेखी दिखाना, परिवार में अत्यधिक औपचारिकता तथा झूठा दिखावा करना। यह सब बातें शिक्षा, सकारात्मक सोच, मन की विशालता, धैर्य, दूरदृष्टि सहनशीलता आदि से कम की जा सकती हैं।

आज से लगभग चालीस वर्ष पहले संयुक्त परिवार में एक ही रसोई होती थी तथा सब मिलकर साथ-साथ प्रेम से भोजन किया करते थे। उस भोजन का आनंद अलग ही था। घर में दादी या ताई रसोई का सारा काम अकेले संभालती थी तथा उसका सारा दिन रसोई में ही बीतता था। परिवार में आनंद तथा एकात्मकता का वातावरण अत्यन्त ही उत्साह जनक था। अब यह सब व्यवस्था आधुनिकता के चक्र की शिकार हो गई है। परिवारों में परस्पर प्रेम तथा त्याग का विलोपन होता जा रहा है।

आमतौर पर ऐसा माना जाता रहा है कि संयुक्त परिवार का जीवन चक्र (अर्थात् परिवार के विभिन्न चरण अथवा अवस्थाएँ) सामाजिक मूल्यों पर आधारित होती है। सामाजिक मूल्यों, संस्कारों तथा नैतिक कर्त्तव्यों के कारण लोग संयुक्त परिवार में रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप परिवार के कमजोर व्यक्ति को भी वही सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं जो परिवार के अन्य सदस्यों को प्राप्त होती है। किंतु अब ऐसा महसूस किया जाने लगा कि संयुक्त परिवार का जीवन चक्र सामाजिक मूल्यों के बजाए आर्थिक कारकों पर अधिक निर्भर करता है। संयुक्त परिवार के बनने में आर्थिक कारकों की मुख्य भूमिका है। संयुक्त परिवार में लोग संसाधनों का साझा उपयोग करते हैं, जैसे- साझा घर, साथ-साथ खाना बनाना, घरेलू वस्तुओं आदि का प्रयोग आदि। निश्चित रूप से इससे खर्च में कमी आती है। जिसके फलस्वरूप लोग संयुक्त परिवार में साथ-साथ रहते हैं ऐसा देखा गया है कि जैसे ही परिवार के किसी सदस्य की आय बहुत अधिक हो जाती है और यदि वह अकेले सारे संसाधनों को जुटाने में सक्षम हो जाता है, तो उसमें संयुक्त परिवार से अलग होकर, एकाकी परिवार बनाने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। यही नहीं औद्योगीकरण तथा भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप बेहतर रोजगार तथा बेहतर जीवन स्तर की तलाश में युवा अपने परिवार से दूर जाकर बस रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप एकाकी अथवा एक परिवारों का चलन बढ़ रहा है, जिससे संयुक्त परिवार टूट रहे हैं।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि संयुक्त परिवार के जीवन चक्र को मुख्य रूप से आर्थिक कारक प्रभावित करते हैं। हालांकि भारत जैसे देशों में संयुक्त परिवार के बने रहने में सामाजिक मूल्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह मूल्य कम मात्रा में ही सही, लेकिन भारतीय समाज में आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। ❑

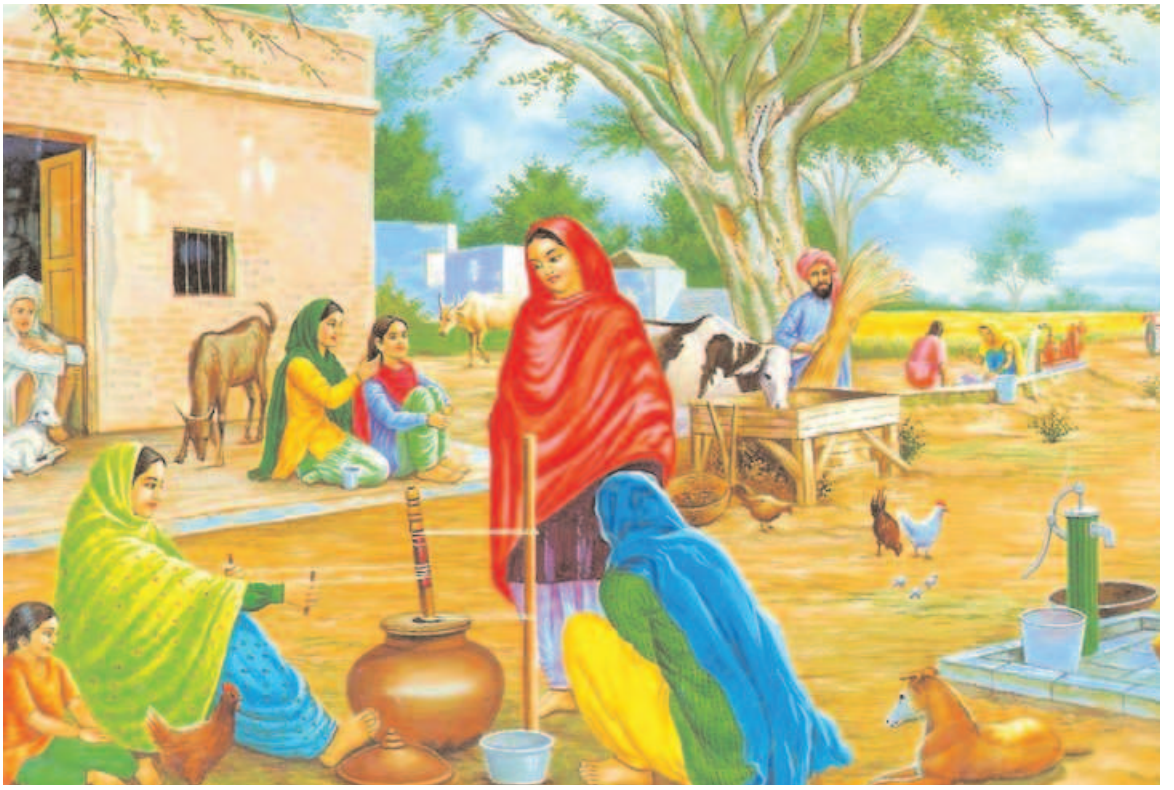

भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप

दीपक कुमार अवस्थी
सहायक प्रोफेसर,
परिष्कार ग्लोबल
एक्सीलेंस कॉलेज,
मानसरोवर, जयपुर

संयुक्त परिवार भारतीय सभ्यता और संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। संयुक्त परिवार के अंतर्गत दो या तीन पीढ़ियों का एक साथ अस्तित्व होता है। भारतीय समाज की वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को प्रतिपादित करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अंतर्गत परिवार को मानवीय कल्याण का माध्यम माना गया है। वर्तमान में सभ्यता संस्कृति के विकास के कारण संयुक्त परिवार की वैज्ञानिक एवं तार्किकता पर पर्याप्त संदेह बना हुआ है। जैसे-जैसे विकास की अवधारणा प्रभावी हुई है वैसे-वैसे परिवारों के संयुक्त रूप में बिखराव आया है।

21वीं सदी जहाँ विकास और समृद्धि की सदी के रूप में पहचान बनाने की दिशा में अग्रसर है वहीं यह सदी अनगिनत संस्कृतियों और संरचनाओं की विलुप्ति की गवाह भी बनती जा रही है। आज हमें असंख्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह समस्याएँ सिर्फ प्राकृतिक ही नहीं बल्कि मानवजनित भी हैं। इनमें प्रमुख समस्या सामाजिक संरचनाओं का परिवर्तन है जिसे हम लगातार महसूस करते हुए भी रोक नहीं पा रहे हैं। इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण कोरोना महामारी के अंतर्गत दिखाई दिया। सामाजिक विखंडन की नई

समस्याएँ पैदा हो रही हैं। परिवार प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा के साथ-साथ आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से उन्नत बनाता है। परिवार में प्रत्येक व्यक्ति का अहम् स्थान होता है। उन सभी के संयुक्त प्रयासों से सामाजिक उन्नति की भावना का विकास होता है। भारतीय समाज चिंतन परम्परा के अंतर्गत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरूषार्थ पारिवारिक जीवन में ही व्यवस्थित तरीके से प्राप्त हो सकते हैं। संयुक्त परिवार में अनेक अनियंत्रित अनाचरणों एवं कामनाओं पर रोक लगाकर सद्भाव के आधार पर उचित एवं वैधानिक तरीके से व्यवस्थित किया जाता है। इसी के अंतर्गत विश्व कल्याण की भावना का प्रतिपादन होता है। परिवार समाज की मूल या प्राथमिक इकाई है। परिवार जैसी नैसर्गिक अन्य सामाजिक संस्था नहीं है। परिवारों को विविध युगों में संरचना के आधार पर एकल एवं संयुक्त परिवार के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

एकल परिवार में माता-पिता एवं भाई-बहन सम्मिलित होते हैं वहीं संयुक्त परिवार में दो से तीन पीढ़ियों के सदस्य एक साथ निवास करते हैं। एकल परिवार पितृवंशी या मातृवंशी परम्परा के रहे हैं। परिवार की एक महत्त्वपूर्ण पहचान यह भी है कि इसमें उपनाम सभी सदस्यों का एक समान होता है। प्रसिद्ध सामाजिक विचारक इरावती कर्वे ने संयुक्तता 'सहनिवासिता' को संयुक्त परिवार का महत्त्वपूर्ण अंग माना है लेकिन संयुक्त परिवार के अंतर्गत सहनिवासिता के अतिरिक्त सहभोज भी महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। दूसरे रूप में देखें तो संयुक्त परिवार, व्यक्तियों का एक ऐसा समूह जो विवाह के बंधन, खून के रिश्ते या गोद लिए जाने से बंधकर एक परिवार का निर्माण करते हैं, जो पति और पत्नी, माता और पिता, पुत्र और पुत्री, भाई और बहन की अपनी-अपनी सामाजिक भूमिकाओं में एक दूसरे के साथ परस्पर व्यवहार करते हैं और एक समान संस्कृति का सृजन करते हैं।

वर्तमान भूमण्डलीकरण के दौर में जैसे-जैसे आर्थिकता का प्रभाव अधिक तेजी से विस्तार होता जा रहा है उसके अंतर्गत एक परिवार के विभिन्न सहयोगी समूह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे हैं। अत: संयुक्त परिवारों के विखंडन की प्रवृति शनै: शनै: समाज में बहुत तेजी से दिखाई दे रही है। इसका कारण न केवल रोजगार बल्कि सामाजिक मूल्यों में भौतिक परिवेश के अंतर्गत आने वाला परिवर्तन भी महत्त्वपूर्ण है। जिसे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अनेक माध्यमों के द्वारा भारतीय समाज और उसकी प्रणाली में धीरे-धीरे पिरोया जा रहा है। संयुक्त परिवार के विखंडन से समाज के सांस्कृतिक तानेबाने के साथ-साथ परिवार के महत्त्व से हम वंचित होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार हमारे व्यक्तित्व को नया आयाम प्रदान करता है। संयुक्त परिवार की विलुप्त होती संस्कृति भी एक ऐसा पक्ष है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन को प्रभावित कर रहा है।

भारतीय समाज और संस्कृति की दुनिया भर में एक अनूठी पहचान है। धर्म, दर्शन, ज्ञान एवं जीवन शैली का एक विशिष्ट एवं समावेशी भारतीय मॉडल दुनिया भर के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। संयुक्त परिवार की संस्कृति भी भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण पहचान है जो कि आज विलुप्ति की दिशा में अग्रसर है। संयुक्त परिवार प्रणाली संपूर्ण विश्व में भारत की अद्वितीय देन है। ये सामाजीकरण का एक ऐसा यंत्र है जहाँ पर स्नेहपूर्ण वातावरण में कम संसाधनों के साथ नियंत्रण की भावना का विकास होता है। संयुक्त परिवार, संयुक्त उत्तरदायित्व के आदर्श के आधार पर कार्य करता है। संयुक्त परिवार के माध्यम से सामाजिक भावनात्मक अनुभव का विकास, सहचर्य, समावेशित संस्कृति तथा समन्वय की भावना, बेहतर नागरिका का निर्माण, सकारात्मक सहयोग, सम्प्रेषण एवं अभिव्यक्ति के अवसर, व्यक्तित्व का विकास, आर्थिक सहयोग, मनोवैज्ञानिक सुदृढ़ता प्राप्त होती है। संयुक्त परिवार के माध्यम से ही समाज की संस्कृति का संरक्षण एवं बच्चों का सर्वांगीण विकास होता है। संयुक्त परिवार एकता के सूत्र में बंधे रहने की कला का वाहक भी है। इस प्रकार से संयुक्त परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था है जहाँ पर सामाजिक सुरक्षा के साथ-साथ आर्थिक विकास के अवसर भी प्राप्त होते हैं। इसी तरह संयुक्त परिवार प्रथा के अनेक महत्त्व परिलक्षित होते हैं।

संयुक्त परिवार के विखंडन का एक प्रमुख कारण आर्थिक है। आर्थिक प्रक्रियाओं के कारण परिवार और नातेदारी

संबंध रूपांतरित होते हैं। औद्योगिकीकरण, मशीनीकरण और शहरीकरण ने मध्यमवर्ग की अवधारणा को जन्म दिया जिसके कारण मध्य वर्ग संयुक्त परिवार की संस्कृति के अनुसार अपना जीवन यापन नहीं कर सकता। व्यक्तिवाद एवं पूंजीवाद ने संयुक्त परिवार की संरचना को काफी हद तक प्रभावित किया। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने संयुक्त परिवार को बंधन के रूप में देखा एवं पूंजीवाद ने भावनात्मक संबंधों के बजाय आर्थिक पक्ष को ज्यादा महत्त्व दिया। लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार से दूर दूसरे राज्यों या देश की तरफ पलायन करने लगे और फिर वहीं बस गए।

संयुक्त परिवार के विलुप्त होने का प्रमुख कारण स्वतंत्रता एवं समानता का दृष्टिकोण, पारिवारिक मर्यादाओं का उल्लंघन अर्थात् शीर्ष नेतृत्व द्वारा लिये गये निर्णय की अनुपालना ना करना, सामाजिक रीति-रिवाजों एवं धार्मिक विश्वासों में होता हुआ परिवर्तन है।

भौतिकवादी परिवेश में स्त्री और पुरुष की समानता के दृष्टिकोण से देखें तो संयुक्त परिवार की स्थिति अधिक संतोषजनक नहीं कही जा सकती। आज पितृसत्तात्मक समाज में महिलाएँ लैंगिक

भारतीय समाज और संस्कृति की दुनिया भर में एक अनूठी पहचान है। धर्म, दर्शन, ज्ञान एवं जीवन शैली का एक विशिष्ट एवं समावेशी भारतीय मॉडल दुनिया भर के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। संयुक्त परिवार की संस्कृति भी भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण पहचान है जो कि आज विलुप्ति की दिशा में अग्रसर है। संयुक्त परिवार प्रणाली संपूर्ण विश्व में भारत की अद्वितीय देन है। ये सामाजिकरण का एक ऐसा यंत्र है जहाँ पर स्नेहपूर्ण वातावरण में कम संसाधनों के साथ नियंत्रण की भावना का विकास होता है।

भेदभाव का सामना कर रही हैं। यह बात ठीक है कि एकल परिवार में लैंगिक अंतर कम तथा निजता का अधिक अवसर प्राप्त होता है इसलिए भी लोगों का संयुक्त परिवार से मोहभंग होता दिखाई दे रहा है। आत्मनिर्भरता ने भी संयुक्त परिवार की संरचना को प्रभावित किया है जैसे-जैसे लोग आत्मनिर्भर होते जाते हैं वैसे ही अपनी व्यक्तिगत जिंदगी में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार करना उन्हें बंधन जैसा लगता है। लोगों की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ संयुक्त परिवार के दरकने का एक प्रमुख आधार है।

वर्तमान आधुनिकीकरण के अंतर्गत समाज के परम्परागत संयुक्त रूप में परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक तेजी से प्रभावी हो रही है। ये भारतीय सभ्यता और संस्कृति की मूलभावना के विपरीत है। पश्चिम के अंधानुकरण से हम अपनी मूल संस्कृति और पारिवारिक परिवेश को कमजोर करते जा रहे हैं। भौतिकवादी शैली ने समाज के विखंडन का जो रस्ता तैयार किया है इसका अंत हमारी सामाजिक प्रक्रिया के पूरी तरह विनाश के लिए उत्तरदायी होगा। संयुक्त परिवार मानवीय मूल्यों, सर्वांगीण विकास तथा एक दूसरे के सम्बल का वाहक है। इसके पतन से आज नवयुवकों में आत्महत्या जैसी प्रवृति बढ़ती जा रही है।

आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और एक आभासी दुनिया का निर्माण हो रहा है लेकिन इन ऑनलाइन रिश्तों की सीमाएँ हैं। वास्तविक समुदायों में जो गहराई होती है उसका मुकाबला आभासी समुदाय नहीं कर सकते। लोगों की रुचियों पर कब्जा करके और फिर उनको विज्ञापन कर्ताओं को बेचकर हम वैश्विक समुदाय की स्थापना नहीं कर सकते।

हमें आधुनिकता एवं विकास की विभिन्न अवधारणाओं के मध्य विश्वसनीय समन्वय स्थापित करना होगा। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के युग में जो चुनौतियाँ प्राप्त हो रही हैं उन्हें सहज तरीके से संयुक्त परिवार प्रथा के माध्यम से दूर करने के लिए उपाय करने होंगे।

हमें अपनी अमर्यादित आवश्यकताओं को मर्यादित रूप में परिवर्तित करना होगा। एकल परिवार का आकार यद्यपि छोटा होता है जिसमें तत्कालीन सुविधाएँ प्राप्त हो पाती हैं लेकिन संयुक्त परिवार का महत्त्व हमें विशिष्ट सामाजिक संरचना के अंतर्गत बनाये रखना होगा। ❑

भारतीय समाज की परिवार व्यवस्था में परिवर्तन के प्रमुख कारण

डॉ. कविता
सहायक प्रोफेसर
(विद्या संबल),
राजकीय महाविद्यालय
नीमराणा (हरियाणा)

भारत का समाज हमेशा से ही परस्पर निर्भरता एवं सामंजस्य को बढ़ावा देता रहा है। जिसमें परिवार एक प्रमुख इकाई के रूप में माना जाता है। भारत वसुधैव कुटुम्बकम् के दर्शन का पालन करता है। सामूहिकतावादी दृष्टिकोण भारतीय समाज का आधार रहा है। वर्तमान में धार्मिक रूप से समाज चिरंजीवी बना हुआ है तो यह भारत की कुटुम्ब या परिवार व्यवस्था के कारण ही बनता है। लंबे समय तक विदेशी शासकों के प्रभाव के बावजूद भी यदि धर्म बचा हुआ है तो वह कुटुम्ब व्यवस्था के कारण ही बचा हुआ है। दरअसल हमारी सभी सामाजिक आपूर्ति का साधन कुटुम्ब भावना ही है यह परिवार की भावना केवल रक्त संबंधों तक ही नहीं है बल्कि खून के रिश्तों से आगे सृष्टि के चरित्र तक ले जाना कुटुम्ब व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। जैसे गुरु का मानस पुत्र शिष्य होता है। प्रजा का पिता राजा होता है। गंगा, गाय तुलसी यह माताएँ होती हैं। अर्थात् इस संपूर्ण प्रकृति स्वरूप में मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु पक्षी पेड़ पौधे रक्त संबंध परिवार पड़ोसी भिक्षुक भिखारी आदि समस्त विश्व एक कुटुम्ब माना जाता है।

विश्व के अधिकांश हिस्सों में मुख्य रूप से भारत में परिवार समाज की मूलभूत संस्था रहा है। पारिवारिक संरचना के स्वरूप में भारत में कुछ परिवर्तन देखने को मिले हैं। यह बदलाव आधुनिक परंपराओं, सामाजिक आर्थिक कार्यों को एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच जटिल अंतर संबंधों को उद्घाटित करता है। भारत का समाज हमेशा से ही परस्पर निर्भरता एवं सामंजस्य को बढ़ावा देता रहा है। जिसमें परिवार एक प्रमुख इकाई के रूप में माना जाता है। हालांकि बदलते परिवेश एवं वातावरण ने संयुक्त परिवार प्रथा को लगभग समाप्तप्राय कर दिया है। किंतु आज भी भारतीय समाज परिवार एवं रिश्तों के ताने-बाने के आधार पर ही चलता है। किंतु भारत में पारिवारिक समाज पितृ सत्तात्मक एवं कई स्थानों पर मातृ सत्तात्मक रहा है। परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है किंतु हर जगह इसके अलग-अलग स्वरूप मिलते हैं पश्चिमी देशों में मूल परिवार या दांपत्य परिवार प्रधान रूप से था तो भारत में विस्तृत या संयुक्त परिवार था। परिवार को संस्था एवं समूह दोनों माना जाता है। परिवार आदिकाल से ही बड़े बुजुर्गों का मुख्य आश्रय रहा है जो उसकी शारीरिक भावनात्मक एवं आर्थिक जरूरत को पूरी करता है। किंतु पूंजीवादी व्यवस्था एवं उदारवाद के प्रसार ने संयुक्त परिवार व्यवस्था के समक्ष चुनौती खड़ी कर दी है। इस व्यवस्था के टूटने का कारण निरंतर बढ़ता उपभोक्तावाद है परिवार व्यवस्था में परिवर्तन की प्रमुख कारणों पर नीचे चर्चा की गई है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण एवं उदारीकरण का प्रभाव संपूर्ण विश्व में व्याप्त हो रहा है। इस वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की अपनी विशेषता है- स्वार्थपरता, स्वतंत्रता, व्यक्तिवादिता, स्वच्छंदता, प्रतिस्पर्धा। वैश्वीकरण की प्रक्रिया और तकनीकी विज्ञान की प्रगति ने आर्थिक संबंधों को नई दिशा दी है। परिवार के जीवन मूल्य, आदर्श संस्कार एवं सरोकार भी इससे प्रभावित हो रहे हैं

इसलिए आज हमें कुटुम्ब एवं परिवार व्यवस्था में परिवर्तन देखने को मिलता है। संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था जो समाज की सुरक्षा एवं भावनात्मक एकता की सबसे बड़ी ताकत थी वह भी अब बिखरने लगी है।

औधोगिकीकरण – भारत में अंग्रेजों के आने से औद्योगीकरण शुरू हुआ एवं स्वतंत्रता के बाद इसमें तेजी आई जिसके कारण ग्रामीण जनसंख्या शहरों की ओर उन्मुख हुई। रोजगार मिलने के कारण उनके परिवार से निर्भरता घटी और परिवार से विलग हुए।

शिक्षा – शिक्षा भले ही सीखने के लिए ली जाती है किंतु जब से शिक्षा से रोजगार एवं पूंजीवाद को बढ़ावा मिला है तब से इसके मायने बदल गए हैं। इसलिए व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया है।

महिला सशक्तीकरण – शिक्षा के बलबूते स्त्रियाँ आगे बढ़ी हैं जो पहले परिवार में माता–पिता, पति, भाई पर निर्भर रहती थी वह अब खुद की जरूरतें पूरी कर लेती है आर्थिक रूप से मजबूत हुई है। अंतत: व्यक्तिवाद के रूप में परिणत होता है।

विवाह व्यवस्था – पहले छोटी उम्र में शादी कर दी जाती थी किंतु आज करियर, प्रसिद्धि और शिक्षा के कारण विवाह की आयु में परिवर्तन हुआ है, वह भी परिवार व्यवस्था में परिवर्तन का प्रमुख कारण है।

पारिवारिक झगड़े – परिवार में आपसी झगड़ों के कारण भी संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं। संपत्ति, पारिवारिक आय तथा कार्यों का असमान वितरण भी झगड़े का कारण बनता है।

संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार में अंतर

संयुक्त परिवार बहुत कम बचे हैं स्वतंत्रता पसंद करने वाला इंसान संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं करता है क्योंकि वह अपने तरीके से रहना चाहता है। यदि हम संयुक्त परिवार और एकल परिवार पर बात करें तो संयुक्त परिवार में व्यक्ति रिश्ते, संस्कार, व्यवहार को साधना सीख लेता है किंतु आज एकल परिवार में रहने वाले व्यक्ति में रिश्ते, संस्कार तो दूर व्यवहार भी नहीं झलकता है। पहले लोग एक दूसरे को सम्मान देते थे रिश्ते और संस्कार पर बात करते थे, किंतु आज पैसे और व्यापार पर बात की जाती है।

संयुक्त परिवार में एकता – साझे परिवारों में हर व्यक्ति एक दूसरे से सामंजस्य बनाकर परिवार चलता है बड़ा बुजुर्ग परिवार का मुखिया होता है। जिसके अनुसार संपूर्ण परिवार व्यवस्था रिश्ते और संस्कार पर चलती है। संयुक्त परिवार में मतभेद होने पर भी परिवार के किसी व्यक्ति पर मुसीबत आने पर एक दूसरे के साथ खड़े रहते हैं। हर व्यक्ति जिम्मेदारियों को स्वयं पहल करते हुए पूर्ण करता है। बच्चे भी अनेक प्रकार की चीज जैसे रिश्तों की समझ, व्यवहार, संस्कृति आदि संयुक्त परिवार में ही सीखते हैं।

एकल परिवार में संस्कार – एकल परिवार में बच्चों को संस्कार तो मिलते हैं पर संयुक्त परिवार की तरह नहीं। उन्हें प्यार भी मिलता है किंतु संयुक्त परिवार की तरह नहीं मिलता है क्योंकि एकल परिवार में बच्चों को प्यार एवं शिक्षा सिर्फ माता–पिता से मिलती है। दादा, दादी, चाचा, ताऊ का जिन आदि के रिश्तों के बारे में और संस्कार के बारे में पता नहीं चलता है। वर्तमान समय में अधिकांश लोग अपने माता–पिता के साथ नहीं रहते हैं इस प्रकार की स्थिति में भी वे बच्चे परिवार का महत्त्व नहीं समझ पाते हैं। वस्तुओं को मिल बैठकर खाना और भाई–बहनों से भी परिवार का महत्त्व नहीं जानते हैं।

विश्व के अधिकांश हिस्सों में मुख्य रूप से भारत में परिवार समाज की मूलभूत संस्था रहा है। पारिवारिक संरचना के स्वरूप में भारत में कुछ परिवर्तन देखने को मिले हैं। यह बदलाव आधुनिक परंपराओं, सामाजिक आर्थिक कार्यों को एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच जटिल अंतर संबंधों को उद्घाटित करता है। भारत का समाज हमेशा से ही परस्पर निर्भरता एवं सामंजस्य को बढ़ावा देता रहा है। जिसमें परिवार एक प्रमुख इकाई के रूप में माना जाता है। हालांकि बदलते परिवेश एवं वातावरण ने संयुक्त परिवार प्रथा को लगभग समाप्तप्राय कर दिया है। किंतु आज भी भारतीय समाज परिवार एवं रिश्तों के ताने–बाने के आधार पर ही चलता है।

परिवार की विशेषताएँ

भावनात्मक आधार – परिवार के समस्त सदस्य भावनात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। माँ बच्चे का संबंध पालन पोषण एवं पिता द्वारा दी गई सुरक्षा आदि परिवार की ऐसी विशेषता हैं जो परिवार के सभी सदस्यों के बीच भावनात्मक सूत्र को बाँधे रखती है।

रचनात्मक प्रभाव – रचनात्मक प्रभाव से अर्थ है कि परिवार अपने सभी सदस्यों से सामाजिक रूप से सहयोगी व्यवहार की आशा रखता है। बच्चों पर भले ही माता–पिता के व्यवहार का प्रभाव पड़ता हो किंतु साथ ही माता–पिता भी बच्चों के व्यवहार से प्रभावित होते हैं। और एक बार परिवार में जिन तरीकों एवं व्यवहार का निर्माण हो जाता है वह हमेशा व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बने रहते हैं।

सामाजिक नियंत्रण – सामाजिक नियंत्रण परिवार की उच्चतम विधि है। परिवार प्राथमिक समूह होने के कारण व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण रखता है।

आर्थिक सुरक्षा – प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है तथा अस्वस्थ होने पर उपचार की व्यवस्था करता है। प्रत्येक सदस्य की भोजन की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य है। स्त्रियाँ घर के खाने पीने की व्यवस्था करती है तो पुरुष घर के बाहर अर्थोपार्जन में लगे रहते हैं। ❑

कुटुम्ब व्यवस्था और संस्कार

अलका शर्मा
अध्यापिका,
गवर्नमेंट मिडल स्कूल
अलोरा, सतवारी में कार्यरत

भारत की कुटुम्ब व्यवस्था बेहद प्राचीन है। कुटुम्ब अर्थात् परिवार। हमारे पूर्वजों ने बहुत सोच-समझकर, परिश्रमपूर्वक परिवार व्यवस्था का निर्माण किया था। केवल व्यवस्था का निर्माण ही नहीं किया अपितु उसे पूर्णत्व की स्थिति तक ले गये। बहुत दीर्घ काल तक विदेशी शासकों के प्रभाव के उपरांत भी आज यदि हमारे समाज में कुछ नैतिकता शेष है तो वह परिवार व्यवस्था के कारण ही है। हालांकि अपवाद निरंतर देखने में आते हैं जब नैतिकता को हाशिए पर रखने वाले असामाजिक तत्व अपनी नकारात्मक सक्रियता दर्शाते हैं, उस समय हमें नए सिरे से संस्कारों को विकसित करने की आवश्यकता महसूस होती है।

लगभग 200-225 वर्षों की विपरीत शिक्षा के उपरांत भी यदि हमारे समाज में कुछ धार्मिकता बची है तो वह हमारी कुटुंब व्यवस्था के कारण ही है। लेकिन विपरीत शिक्षा के साथ चल रही इस लड़ाई में कुटुम्ब व्यवस्था भी क्षीण हो गई है। प्राचीन काल में मनुष्य के जीवन में धर्म का विशेष महत्त्व था। धर्म के साथ ही संस्कारी व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और यह सिलसिला अनवरत रूप से अब तक चलता आया है। संस्कारों का उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व को इस प्रकार विकसित करना था कि वह विश्व में मानव और अतिमानव शक्तियों के साथ समन्वय स्थापित कर सके।

वास्तव में संस्कार वे प्रभाव और स्वभाव हैं जो दूसरों के साथ बातचीत, विचार, इरादे, जानबूझकर किए गए कार्यों और ऐसे कर्मों से किसी व्यक्ति के अंदर गहराई से विकसित और जमा हों। कुटुम्ब व्यवस्था में निश्चित रूप से आध्यात्मिक जीवन में मदद करने और पवित्रता में बढ़ने के लिए संस्कार स्थापित किए गए हैं। संस्कारों से ही मानव का शुद्धीकरण होता है,

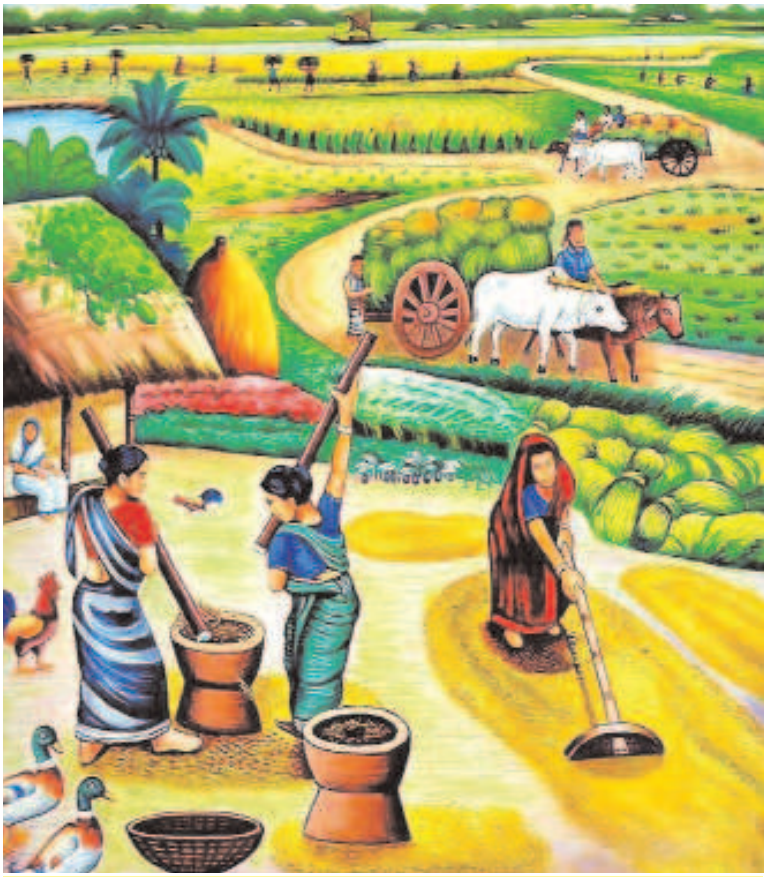

वास्तव में सुखी सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का रहस्य ही 'परिवार भावना' में है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों का आधार कुटुम्ब भावना ही है। समाज के सुखी और समृद्ध होने का अर्थ है समाज का सुसंस्कृत होना और समाज की सभी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करने की शक्ति उस समाज में होना।

स्पष्ट है कुटुम्ब व्यवस्था में संस्कारों का होना अति आवश्यक है।

कुटुम्बों को फिर से व्यवस्थित कैसे किया जाए इस की चिंता हमारे देश में ही नहीं अपितु अन्य देशों के तथाकथित हितचिंतक विद्वान भी करने लगे हैं। प्रेम, आत्मीयता, कर्तव्य भावना, निस्स्वार्थ भाव से औरों के हित को वरीयता देना, त्याग करने की मानसिकता, इन सब को लोगों के मनों में पुनः जगाना सरल बात नहीं है।

वास्तव में सुखी सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का रहस्य ही 'परिवार भावना' में है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों का आधार कुटुम्ब भावना ही है। समाज के सुखी और समृद्ध होने का अर्थ है समाज का सुसंस्कृत होना और समाज की सभी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करने की शक्ति उस समाज में होना। अंत में यही कहूँगी कि कुटुम्ब व्यवस्था में सुसंस्कृत, सुखी, धैर्यपूर्ण व्यक्तित्व, स्वावलंबी, आत्मविश्वासयुक्त, सदाचारी, सामाजिकता और नैतिकता के संस्कारों की व्यवस्था होना परम आवश्यक है। ❑

‘Resilience’ of the Indian Family System in the Era of Decay

Dr. Anil Kumar Biswas

Associate Professor
Department of Political Science, The University of Burdwan

Human society across the world has suffered from serious challenges; such as social, economic, environmental, and political. These challenges have threatened human society since the emergence of the Industrial Revolution. Pre-industrial society across the world was peaceful, happy, and tolerant. However, the emergence of surplus production due to the Industrial Revolution and its uneven distribution has created an economic hierarchical society and made men greedy. The roots of the present socio-economic, environmental and political disorders are deepening in this surplus production. So, human society across the world now is deepening in corruption, nepotism, terrorism, conflicts, and violence-like challenges. War is going on now in parts of Europe, and West Asia, and war-like situations prevail across the world. People across the world face intolerance and conflicts and they are suffering from depression; deepening poverty, threatening their basic human rights, and also suffering from environmental degradation. In short present world is standing in an era of decay. Lack of resilience among people is one of the prime causes of the situation. In this situation, the teaching of resilience can to save the human society. Family is the basic unit of a society and individual is the basic unit of a family. The goodness of a society depends on the values of a family and a family comprising of few individuals. So the values of a family depend on its quality members or individuals and at the same time quality members are built through the teaching of a family. In this regard, it is right to say that the primary task of a family is to build quality members through the teaching of resilience.

Indian Family System

Indian family system does not mean only a unit consisting of a husband, wife, and their children. Indian family means a family consisting of a husband, wife and their children, grandfather, grandmother, uncles, aunts, and cousins. It is also found that the extended family in Indian society

comprises of maternal grandfather and grandmother, maternal uncles and aunts along with the paternal side. This type of family is called a joint family or extended family. In an Indian family, a son usually does not separate from his parents after marriage; he continues his stay with other members under the same roof. In the Indian family system, every member of a family enjoys equal rights on the property of the family and earnings of the family; earnings of the family are deposited in the common fund to the hand of an elderly person of the family who is the headman of the respective family and expenses of the family executed by him. Due to the common responsibilities, no one needs to bear huge tasks of responsibilities. Non-earning members can also enjoy the same privileges as earning members of the family. Female members are respected in the Indian family system. Indian joint families are under the supervision of the family headman and every decision is taken through consultation with each other. Everyone in a family enjoys due respect according to their relational position. Old-aged persons and children enjoy due care and respect from their family members.

Traditionally Indian society is formed based on the joint family. Indian civilization is the oldest civilization in the world and since very early the civilization has borne the values of the joint family. Indian scriptures like 'The Vedas', 'The Upanishads', 'The Ramayana' and 'The Mahabharata' teach us about the formation and structure of a family, the duties and responsibilities of members in a family, and overall rules and regulations in a family and beyond family. Various evidences from Indian scriptures show that under a joint family system members of a family enjoyed enormous freedom, lived stress-free lives, and enjoyed due caring. People were resilient to each other within the family and beyond family towards society. Our holy book the 'Ramayana' details how people were happy, peaceful, free, and resilient and enjoyed freedom in 'Ram Rajya'. People enjoyed a complete life under good governance provided by King Sri Ram Chandra; which he learned from his family. The 'Mahabharata' can also teach us the importance of values and resilience of the family system. The 'Vedas' detail the various marriage systems of Hindu communities; which is the base of the Indian family system and teaches us the resilience of the then family.

Family as a School of Resilience

The education of a child starts from his birth. Formal schooling is now started at the age of 3 years of age as per National Education Policy 2020; before NEP 2020 it was 6 years. But learning of a child starts from his or her birth. So before formal schooling children start to learn from his or her parents and family. In this background, the question may be raised how a person learns resilience in a joint family system. In the Indian joint family system, grandfather to grandchild are living in a common house or common roof. A child from his or her early age starts to watch the activities and behaviours of all family members and notices how parents and others pay due respect to each other, act and react to each other, care for each other, take responsibility within the family and beyond, role in decision

making and sharing. These all are building the base of knowledge of children in a joint family. Values of a joint family can build the future character of children. Learning in a joint family makes children self-dependent, self-reliant, and self-esteemed. Family is the first school of a child where he grows and spends most of the time of day and night. So the importance of a family in the life of children is more momentous than formal school. A family can make a person a complete man or woman through family values.

Conclusion

However, since the nineteenth century, the family system in India has started to transform into a nuclear family due to the impact of Western culture, modernization, technological innovations, industrialization, globalization, and neo-liberal economy. The transformation of livelihood patterns from agriculture to industry has increased the dependency on the market; which threatens the age-old joint family system in India. The nature of the present livelihood pattern, development of infrastructure and communication leads to human migration within the country and beyond; under which people are now bound to stay in a nuclear family. Misuse of surplus products, technology and unethical development in the name of modernization has misguided the people, destroying the environment and eco-system and forcing the people to be involved in corrupt practices and nepotism. Housing patterns in urban and semi-urban areas are unnecessarily transformed into multi-storyed apartments; in many cases, it creates serious challenges to the joint family pattern in India. People from all strata now want to live lonely in apartments which leads to depression among the dwellers and in many cases this leads to intolerance. As a result, the present society is now suffering from various kinds of challenges; challenges as intolerance, conflicts, unwanted dependency, hate speeches by political leaders, social and financial corruption, and passing wrong information; which leads our society to decay. These types of challenges may lead to the decay of our society by destroying the traditions and values of our family. So in conclusion I can say that the teaching of resilience of our joint family system can only protect our oldest glorious society and also can save the world from decay through the teaching of tolerance of Indian tradition. ❑

Our holy book the 'Ramayana' details how people were happy, peaceful, free, and resilient and enjoyed freedom in 'Ram Rajya'. People enjoyed a complete life under good governance provided by King Sri Ram Chandra; which he learned from his family. The 'Mahabharata' can also teach us the importance of values and resilience of the family system. The 'Vedas' detail the various marriage systems of Hindu communities; which is the base of the Indian family system and teaches us the resilience of the then family.

Family and Society

Dr. G.V. Snigdha Raj

Assistant Professor,
Centre for Comparative Religion and Civilizations,
Central University of Jammu,
Jammu and Kashmir.

What makes Bharat so different from other world countries is its family system. Why is family very important? They provide us with food, love, security, comfort, and many more. These things come to our mind once we think about it. A child learns stuff through the family. The basic element of a society is family. It's a universal concept and exists everywhere irrespective of religion, culture, community, etc. It's difficult to trace the history of its existence but it is generally believed that human beings started living together in a society which led to marriage and resulted in families.

Family plays a major role in moulding a person as per society. The base of a family is the marriage system in which a man and a woman marry each other stay together and procreate children. These children are taught to adjust to the society they live in. When the children reach adulthood, they get married and procreate. This is a continuous process and it keeps the society going. A family is a unit which is guided by certain rules, responsibilities, needs, rights, etc. Every member of a family will play their role and fulfil their responsibility which may be financial, emotional, social, etc. Society and family go hand in hand.

The family is differentiated into two based on size and structure i.e. Joint family/ extended family and nuclear family. A joint family/extended family is one where the members of three to four generations live together. This kind of family was present in India for a long time. The economy of India was agrarian, especially in the past hence this type of family was very helpful since every member of the family would take part in agricultural activity. Apart from this joint families helped in the socialization of the children. Children would grow up with the entire family and would learn many aspects from all the members. The elders of the family teach cultural aspects, religious aspects, and other things to the youngsters thus helping them to pass on to the next generations. Many families in our country are well-versed in carrying family business and holding on to their trade secrets within the family. The traditional activities were also carried forward and therefore the uniqueness remained.

The psychological disorders that the youngsters of today's generation are facing due to

loneliness, stress, insomnia, etc are very limited when this kind of family exists. The amount of crime rate was also less since the economic and emotional needs were satisfied in this type of family. Unfortunately, the joint family systems were highly reduced but their existence is still seen in certain regions of the rural Bharath. Researchers still give the example of Bharath when they talk about Joint/ Extended families.

The second type of family is the Nuclear family. It consists of a married couple and their unmarried children. This kind of family is spread throughout the world. It grew after industrialization. They are mostly seen in the urban areas.

The importance of the family system to society

Marriage brings a male and female together thus giving them a way to satisfy their biological and emotional needs which further helps in establishing a disciplined lifestyle and edging to the societal norms. The procreation of children and imparting knowledge to them when they get married and so on is what keeps the system of marriage, family, and society organic. The financial burden of the children is taken care of by the elders of the family thus the family is seen as a production unit. The children of the family also take part in the financial expenses will lead to financial discipline. The cultural aspects like traditions, rituals, practices, beliefs, behaviours, etc are all passed on to the youngsters. Sanatana Dharma which is a way of life has been passed on for many generations in this manner and is still being continued. The identity of a person is also known through his/her family. When we visit villages in our country the people there recognize each other through their families. Family is the first school.

The base of a family is the marriage system in which a man and a woman marry each other stay together and procreate children. These children are taught to adjust to the society they live in. When the children reach adulthood, they get married and procreate. This is a continuous process and it keeps the society going. A family is a unit which is guided by certain rules, responsibilities, needs, rights, etc. Every member of a family will play their role and fulfil their responsibility which may be financial, emotional, social, etc. Society and family go hand in hand.

The Uniqueness of the Indian Family System

Indian family system is based on values. The families are given utmost importance in the Indian society. Children are taught to respect their elders. Even though due to modernization the members of the family are living separately to pursue their respective careers they all come together at least once a year to celebrate festivals. The Western attitude is quite different from ours since they mostly think about themselves, resulting in quick separation. Many studies have proved that more than 40 percent of the children in Western countries are living with single parents. The number of divorce cases is also high in these countries. Living together is treated as normal, which indicates the loss of importance to the marriage system. This might result in a loss of stability in society since the emotion that is seen in a family organization will be completely lost. In Bharath, marriages are seen as a base for the creation of a family and are still celebrated.

In Western countries, the elders in the family are not taken care of by their children and they stay in old age homes. The Governments take responsibility for them. In Bharath, the families take care of the elder ones. Generally, the members of the family see this as their responsibility. The ritual of 'Pinda Dana' is a good example of how the Indians still recall the deceased members of their families every year. In this ritual, they remember three generations of their ancestors and give them offerings. Non-resident Indians who are residing in foreign countries regularly send money to their family members which is resulting in Bharath becoming the top most country in receiving foreign remittance. This can also be seen as one more example portraying the family system in Bharath being the strongest.

The concept of Vasudhaiva Kutumbakam is something that also shows the cruciality of the family in society. Knowing the importance of the family systems in the progression of society the sacred texts of Bharath believed in Vasudhaiva Kutumbakam which says the whole world is one family and now is being appreciated by the entire world. ❑

India's Unique Family Tradition

Dr. Surinder Kumar

Teacher,
School Education
Department,
Jammu & Kashmir

India "the Bharat" is known for family-oriented culture. She believes in "Vasudhaiva Kutumbakam" taken from the Maha Upanishad, to elucidate the country's global outlook.Very recent example is G20-2023 Summit New Delhi, in which the theme itself was "Vasudhaiva Kutumbakam." This ancient Indian saying conveys the idea that the entire world is interconnected and all people are part of a single global family. It promotes the values of unity, cooperation, and the idea that we should treat everyone with kindness and empathy, regardless of their nationality, race, or religion. It's often used to emphasize the importance of global peace and understanding among different cultures and nations.

The family and its values play a very crucial role in social life of citizens. It executes transmission of beliefs, traditions and core values. It is referred to as a basic unit of the society and the social structure. Family contributes immensely in the formation of a human society, because men, women and children are bound in a relationship only through family. Within their family, they learn various kinds of cultures, norms and values that individuals are required to practice in order to become an efficient member of the community. Socialization and internalization of values are taught by family only. Family of Orientation, which consists of ego, parents and siblings and the Family of Procreation, which consists of ego's spouse and children are two types to which an individual belongs. Family of a person directly related to his or her productive existence. The acquisition of good educational qualifications, job opportunities, values, norms, cultural traits and settlement is provided to an individual by his family members, also called as the basic unit of the social organization.

Family System

A family system is a group of people living in one household who share a common familial history and look after each other's physical and emotional needs. Few important characteristics of family worth mentioning are, its large size, joint ownership, production and consumption of wealth, mutual cooperation, joint performance of religious rites and duties, acts as a productive unit in agricultural families, it ensures economic progress, social insurance and virtues, agency of social control etc. It is main socialising institutions of the society. It is the child's first and most immediate social environment. The importance of family lies in bringing up the child to a full man in the family atmosphere. Right from ancient times, families have been the dominating institution in the Indian community lives of the society. A family is always considered as

strong, stable, close, resilient, and enduring between individuals.The main basis of joint family is the subordination of narrow individual interests to the larger interest of the family as a whole. It is the co-operative spirit among the members to help each other at the time of any calamity and their attendance at family functions and the observation of obligations or responsibilities towards other members of the family rather than the facts of co-residence, commensality and the size of the group that keep the family joint. When a joint family grows so large as to be intend to split apart, brothers start new joint families of their own. The Indian joint family has probably always gone through such cycles of formation and fission.

Social Thinkers on Family

A joint family is a group of people who generally live under one roof, who eat food cooked at one hearth, who hold property in common and who participate in common worship and are related to each other as some particular type of kindred are the features of family advocated by Irawati Karve, whereas I.P. Desai focussed on greater generation depth and mutual relations and obligations based on rights of property and income. Other thinkers like Kingsley Davis discussed, a common male ancestor, female offspring not yet married, and women brought into the group by marriage are important units of joint family system, lastly Henry Maine defined the Hindu joint family is a group constituted of known ancestors and adopted sons and relatives related to these sons through marriage.

Family and Society

There is a close relationship between family and society, family is stated to be the most important unit of the society, and a society is comprised of many families. There are certain characteristics that the families should possess in order to deal with the societal commitments and other concerns. The head of the family is required to take all the major decisions, when he needs suggestions and ideas, he may consult other family members. In a society, there are individuals of different backgrounds, status, religions, ethnicity and castes.

The family supports the old; takes care of widows, never-married adults, and the disabled; assists during periods of unemployment; and provides security and a sense of support and togetherness (Chekki 1996; Sethi 1989).To conclude, it may be said that it is a set of relationships and rights and obligations that make a family to be joint rather than its mere structure. 'Instead of large joint families, we will have only locally functioning effective small joint families of two generations and so in current times.

Family and society completes each other with unconditional support usually to small, single parent based families. Both institutions are considered vital to produce a well-organized order in social life.

Modernisation and Household Changes in India

Many scholars have believed that with economic growth, urbanisation, education and cultural changes, India's fabled joint family system would slowly disintegrate. Etienne Breton, Alice Evans, Steven Ruggles and Misty Heggeness, Tulsi Patel etc. after research studies on Indian families advocated that there is no general decline in generations of families staying together, demographic conditions for joint family households remain strong in current times also. One major reason why more young people continue to live with their parents is the increase in life expectancy (Census of India 2001). Slow pace of urbanisation is another reason. Alice Evans, believes Indians continue to live in joint families because strong family bonds encourage family business and low employment of women which, in turn, strengthens family ties. Non-working women remain more rooted in the family. Tulsi Patel, says defining a nuclear family in India is sometimes tricky due to fluid off-and-on joint nature of households because old parents keep moving from one son's home to another and even to daughter's home to give their grandchildren company and to be looked after by their children.

Conclusion

In India the family is the most important institution that has survived through the ages. India, is a collectivist society which is reflected via greater readiness to cooperate with family members and extended kin on decisions affecting most aspects of life, including career choice, mate selection, and marriage (Hui and Triandis 1986; Triandis et al. 1988). For the Hindu family, extended family and kinship ties are of utmost importance. The Indian family is considered strong, stable, close, resilient, and enduring (Mullatti1995; Shangle 1995). The family supports the old; takes care of widows, never-married adults, and the disabled; assists during periods of unemployment; and provides security and a sense of support and togetherness (Chekki 1996; Sethi 1989).To conclude, it may be said that it is a set of relationships and rights and obligations that make a family to be joint rather than its mere structure. 'Instead of large joint families, we will have only locally functioning effective small joint families of two generations and so in current times. ❑

Bharateeya Family Values : Then and Now

Shivkumar M. Belli

Associate Professor
Dept. of Management Studies
Central University of
Karnataka

Our ancestors have placed the highest importance on Grihastha ashrama among the chaturaashramas-four life stages (i.e. Brahmacharya, Grihastha, Vanaprashta, and Sanyasa). The prosperity of Bharat largely lies in its eternal and time-tested values of Grishastha Ashrama (family system). The weakening of Grihastha ashrama makes other ashramas weak and unsustainable. Sustenance and the progress of Brahmacharya, Vanaprashta and Sanyasa ashrama depend entirely upon the Grihastha ashrama for all sorts of support and flourishment.

Let us try to understand this in the present-day parlance. Gaining knowledge is the aashrama-dharma (duty) of the one who is in the phase of the brahmacharya aashraam. In today's context, when we see a student who is studious, punctual, and has good moral conduct is all possible because he or she has a strong well-cultured grihasthi (family) to support. We must have witnessed the difficulties of students who come from families of single parents, nuclear families, or families who have been alienated from the Bharateeya values of the family system. We can see many academic research papers that confirm the influences of family background and structural factors on students' academic as well as overall performance. Similarly, there is a grihastha behind a vanaprasthi to support. The act of caring for elderly parents and relatives with respect and dignity within a family highlights Bharateeya family values and underscores the importance of a solid grihasthi. The rise in the number of old age homes and senior living facilities is an indication of the loss of Bharteeya family values. If annual utsavas (celebrations) are taking place regularly in the temples as per their own tradition; even a few gau-shaalas are running smoothly in this country; if support for artists and art performances is being organized from time to time; if ashramas and mathas can continue their traditions; and a few gurukulas in the nation are still able to offer Bharateeya vidyas and train students in ancient shaastras, it is all because of donations from families who selflessly support these dharmic activities.

The foundation to the prosperity of Bharat lies in its ancient family system and family values.When we take pride in Bharat's large, dynamic, and young population we must also

realise the family values that made this possible. Unfortunately, the young population that we are taking pride in today are distancing from the ancient family values, which will have serious repercussions on the sociocultural and economic fabric of the nation.

Values of the Bharateeya Family System

Collectivismis the foundation of the Bharateeya family system. अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। Meaning, this is mine, that is his, say the small minded, the wise believe that the entire world is a family. This shloka makes a Bharateeya not act solely on the self-centered interests but act in such a manner where his actions consider others' well-being and, in the process, achieve his well-being too. Once, sage Ramana Maharshi was asked by a questioner, "How are we to treat others?" the sage replied, "There are no others". A Bharateeya family is guided by such principles and values. When this was the ideal, it was not uncommon to see, two to three decades ago, a family of 25 to 35 people living under one roof, headed by a family leader.

Swartha Niyamana- meaning regulating or limiting selfishness. Family is the first stage where an individual gets an opportunity to learn to expand his heart, try to support and care for others, and work towards elevating himself into the higher realms of self-development (आत्मोन्नति). To a Bharateeya family head, personal interests and comfort comes later and the first priority is to do everything possible for the wellbeing of his family members. The family head, through his guidance and deeds, naturally imbibes the higher morals and values among other family members. Caring, sharing, and harmony comes effortlessly to the children in such families.

Erosion of Bharateeya Family Values

Other day one of my friend casually asked me on how to wish (of course on WhatsApp) his boss who is blessed with a baby. He specifically asked, "should I write only congratulations or congratulations to both of you?". It may look like a simple question but somewhere it gives a sense that husband and wife are two separate individuals and therefore they have to be wished separately. How to wish on someone's wedding anniversary: wish you 'both' a happy married life or simply happy married life?. Treating husband and wife as two different units is a western view of marriage. For Sanatanis husband and wife are one unit. Unthoughtful imitation of the west, individual economic freedom, media and other breaking India forces are the reasons behind this erosion. Above all, our own ignorance and colonial baggage that we carry are the prime factors for the erosion of Bharateeya family values.

Though the task ahead is not easy, we must make sincere efforts. We can begin by taking small steps to preserve Bharateeya family values. For example, fostering a sense of interdependence among family members is crucial. Taking the time to educate the next generation about their family's history can create a strong sense of bonding. This will guide them in understanding what actions uphold family values and what to avoid. These small steps at an individual level help in preserving and strengthening the essence of Bharateeya family values.

Loss of Bharateeya family values is also the loss of extended bhandhutva (bonding). Does our next generation know the difference between mama and kaka or chacha; mami and kaki or chachi; dada and nana; dadi and naani and are able to experience emotional bonding these relatives offer to each other? For younger generation today, father's brother is also an uncle, the neighbour is also an uncle, and anyone slightly older from whom they want to borrow a pen to fill out the form is an uncle too.The most unfortunate thing is that they use these titles with an air of superiority, and often, the other party feel comfortable being addressed this way.

Our jurisprudence and other legal aspects are largely derived from and influenced by the West, which tends to define the family in a narrow sense. However, Sanatani principles uphold superior moral values regarding the concept of family. That is why it is very natural for a brother to come forward to help his siblings, for a sister to find support from her brothers during the tough tides of life, to feel proud of the achievements of the younger generation in the family, and to stay connected even if circumstances have made them live seven seas apart.

Disconnecting from Bharateeya family values also mean disconnecting from rich cultural and traditional heritage that is unique to each family.

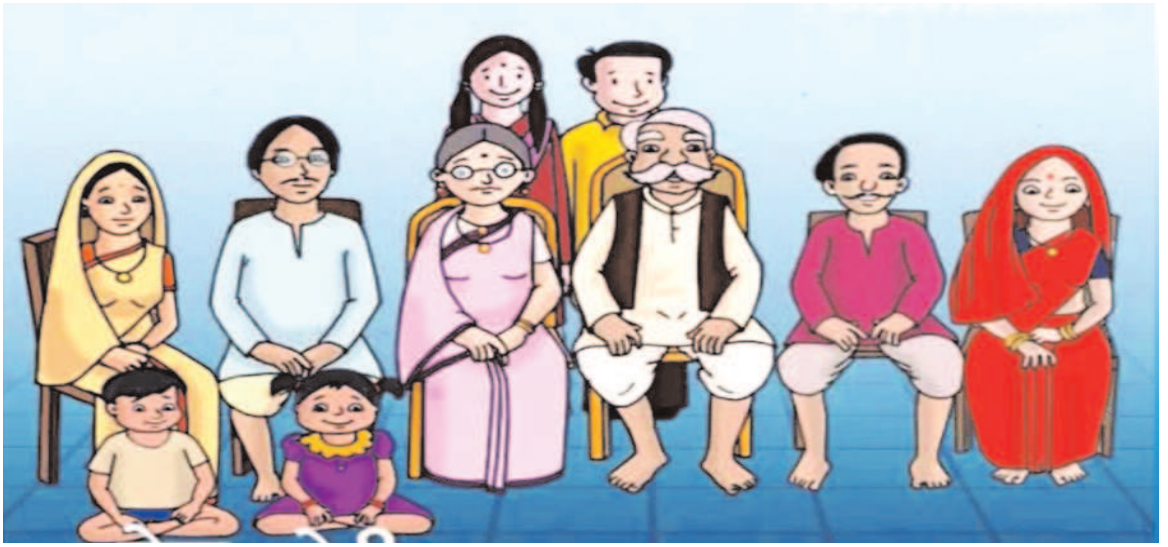

Disassociating from our family values also mean to lose lots of tasty food. Certain paayasam or kheer is prepared in certain families on a specific occasion which slowly becoming a rare dish to find. Many dishes and their recipes have already disappeared from our kitchens and replaced with boxes of pizzas and burgers that are ordered online. Filter coffee is replaced with instant coffee. Bhajans and Devaranaamas are replaced with fast beats. Attending the Shri Satyanarayana Pooja has become mere an event to pose for a photo to upload in social media. Most of the families do not find time (nor interest) in narrating stories from Chandamama or Amar Chitra Katha, stories of their own life or life history of their parents and grandparents.

If you look at the advertisements and films, they tend to glorify smaller families. Pick any insurance company, you will find a small family in their advertisements. The more corporate and multinational the company is the narrower the family photo you see in their advertisements. Pick any daily soaps on television from any language, you get to learn many cheap tricks to break the family system. It does not stop with daily soaps that aim at housewives; it has also reached children comics. Other day, I chanced to see one Hindi comic where two small kids always try to cheat their parents to get their things done, or always busy in creating a plot to see his own sibling in some trouble.

Either by choice or by some sort of economic and social compulsions, families have started becoming smaller. Smaller families and nuclear families can very well afford to pay for all privileges to their family members and children but often fail in giving the required moral values, and psychological strength and build a well-rounded personality. Problems like depression and feeling lonely in relationships were unheard of a few decades ago. Teenagers getting addicted to drugs and social media show that our families have come far away from their Sanatana roots.

What next?

Probably, 'breaking India forces' knows very well that weakening Bharat is easier by making the Bharateeya family weaker. We are witnessing instances where children complain to their parents for checking their social media accounts claiming that it invades their 'privacy'. Materialism, individualism, freedom, my space, my life, and my rules, have been becoming fancy for families. Unfortunately, this disease is more seen in urban dwellers, highly educated families, and higher and upper-middle-income groups.

Though the task ahead is not easy, we must make sincere efforts. We can begin by taking small steps to preserve Bharateeya family values. For example, fostering a sense of interdependence among family members is crucial. Taking the time to educate the next generation about their family's history can create a strong sense of bonding. This will guide them in understanding what actions uphold family values and what to avoid. These small steps at an individual level help in preserving and strengthening the essence of Bharateeya family values. ❑

Allowing Students to Write in Hindi in Engineering

Dr. Bharat Khushalani

Dean, School of Engineering and Technology, Sushant University, Sector 55, Golf Course Road, Gurgaon, Haryana

Our university's recent decision to permit students to write in Hindi, in addition to English, is a progressive move that promises to be highly beneficial for the student body. This initiative is especially relevant and advantageous given the demographics of our students, many of whom come from the Hindi-speaking regions of India. This decision is not only inclusive but also practical, catering to the needs of a significant portion of our student population.

The majority of students in our university hail from the Hindi belt, which includes the NCR region, states like Uttar Pradesh, Bihar, Madhya Pradesh, and Rajasthan, where Hindi is the primary language of communication. For these students, the ability to express themselves in their native language significantly enhances their understanding and performance. English, while important and widely used, does pose a barrier to effective learning and communication for students who are not as proficient in it.

In summary, this initiative is not just about language preference; it is about creating a more supportive and effective learning environment that respects and harnesses the cultural and linguistic strengths of our students. It is a step forward in making the School of Engineering a place where every student can thrive, regardless of their linguistic background.

Engineering is a complex field that requires clear understanding and precise expression of concepts. When students are allowed to use their native language, they grasp intricate concepts more easily and articulate their thoughts more clearly. This leads to better academic performance as students can focus on mastering engineering concepts without the added challenge of translating their thoughts into English.

The pressure to perform in a non-native language causes significant stress and anxiety among students. This negatively

impacts their overall academic experience and mental health. Allowing students to write in Hindi alleviates this pressure, enabling them to approach their studies with more confidence and less anxiety. As a result, students achieve a more enjoyable and productive educational experience.

Inclusivity is a critical aspect of modern education. By recognizing and validating the native language of a significant portion of the student body, the university fosters an environment of inclusiveness and respect. This policy encourages more students to participate actively in their education, as they feel their cultural and linguistic backgrounds are acknowledged and valued. This also enhances classroom discussions and group work, as students are more likely to contribute when they feel comfortable expressing themselves.

With the allowance to write in Hindi, the university also develops and provides learning resources in Hindi. Textbooks, reference materials, and online resources in Hindi can supplement the students' learning, making complex engineering concepts more accessible. This is particularly beneficial for students in their first and second years when they are still acclimating to the rigors of higher education.

While proficiency in English remains important for global career prospects, proficiency in Hindi also opens doors to numerous opportunities within India. The ability to communicate technical

knowledge in Hindi is valuable in many regional and national industries, particularly in sectors like public infrastructure, manufacturing, and government projects. Therefore, this policy not only aids students during their university years but also enhances their career prospects post-graduation.

One concern that arises with this policy is the potential for reduced proficiency in English, which is a global lingua franca. However, this can be mitigated by ensuring that English language instruction remains a significant part of the curriculum. Students should continue to develop their English skills alongside their technical education. Additionally, assessments and examinations can be designed to accommodate both languages without compromising the rigor and standards of the engineering program.

The decision to allow students to write in Hindi is a commendable step towards making education more accessible and inclusive. It recognizes the linguistic diversity of our student population and leverages it to enhance learning and academic performance. By reducing language barriers, the university empowers students to focus on their core subjects, leading to better comprehension, reduced stress, and improved academic outcomes. Additionally, this policy prepares students for a broader range of career opportunities within India, contributing to their long-term success.

In summary, this initiative is not just about language preference; it is about creating a more supportive and effective learning environment that respects and harnesses the cultural and linguistic strengths of our students. It is a step forward in making the School of Engineering a place where every student can thrive, regardless of their linguistic background. ❑

रमेशचन्द्र पाटीदार

सहायक शिक्षक,
मा. वि.अघावन,
जिला-खरगोन (म.प्र.)

उन्नत भारत और राष्ट्रीय शिक्षा नीति

'यथा राजा तथा प्रजा' यह हमारे ऋषियों के अनुभव का सार है, शास्त्रों का सूत्र है और शत प्रतिशत सत्य भी है। किसी भी देश के नागरिकों के चरित्र जैसा ही वहाँ के शासक का चरित्र रहता है, इसलिए चरित्रवान नागरिकों के बिना देश की उन्नति और सुशासन की आशा नहीं करनी चाहिए। बाहरी योजनाएँ कितनी भी सशक्त क्यों न हों वे मानवी विकास में तब तक सहायक नहीं हो सकतीं जब तक कि मनुष्य व्यक्तित्व संपन्न नहीं बनता। आश्चर्य व्यक्त करते हुए प्लूटो ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'दि रिपब्लिक' में लिखा है कि मनुष्य भी कितना विचित्र है कि वह बाह्य संसाधनों और सुविधाओं को अधिक महत्त्व देता है और उन्हें उपलब्ध करने का प्रयास करता है पर वह यह नहीं जानता कि साधन तो जड़ हैं। उनका उपभोगकर्ता चेतन मनुष्य जब तक नहीं सुधरता-बदलता तब तक प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही पड़ा रहेगा। यह भी कैसी विडंबना है कि मात्र शासन अथवा सरकार के परिवर्तन से परिस्थितियों में अभीष्ट स्तर की, सुधार की बात सोची जाती है तथा सभी प्रकार की अवांछनीयताओं, अन्यायों के समाधान की कल्पना की जाती है। 'व्यक्ति', 'समाज' और 'राष्ट्र' का पुनर्निर्माण करना, प्रगति और समुन्नति अभीष्ट हो तो सर्वप्रथम मानवी व्यक्तित्व को परिष्कृत और सुविकसित करना ही होगा। यह कार्य शासन तंत्र द्वारा नहीं व्यक्तित्व संपन्न संघटनों, स्व शिक्षण तंत्र से होगा।

पुरातनकाल में 'गुरुकुल' ही व्यक्तियों की गलाई ढ़लाई करता था। समाज और राष्ट्र की ही नहीं, समस्त विश्व के निर्माण एवं विकास के लिए श्रेष्ठ और सुदृढ़ व्यक्तियों की ढ़लाई जिस फैक्ट्री में होती थी उसका नाम था 'गुरुकुल'। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अथवा किसी क्षेत्र विशेष के विशेषज्ञ गुरुकुल की पाठशाला से ही शिक्षण प्राप्त करके निकलते थे। 'प्रतिभा' ही नहीं 'चरित्र' की पूँजी भी उनके साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती थी जिनके सहारे वे समाज का एक अभिन्न घटक बनकर सामूहिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका संपादित करते थे। आध्यात्मिक विशेषताओं से अनुप्राणित संगठन-गुरुकुल तथा आरण्यक समग्र शिक्षण को सँभालते थे। 'शिक्षा' ही नहीं 'चरित्र' की विशेषता अर्जित करने के लिए सभी समझदार व्यक्ति अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजते थे। 'राजा' और 'महाराजाओं' के बच्चों को भी 'गुरुकुल' के कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था तथा 'चरित्र निष्ठा' की परीक्षा में प्रवेश करना पड़ता था। उसमें सफल होने के बाद ही उन्हें राज्य संचालन करने अथवा कोई महत्त्वपूर्ण पद सँभालने के योग्य समझा जाता था।

वर्तमान में शिक्षण संस्थान ही शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का निर्माण, व्यक्ति से समाज का निर्माण और समाज से देश का निर्माण कर सकता है इसलिए वही गुरुकुल शिक्षण व्यवस्था को युगानुकूल परन्तु भारतीयता का आधार लेकर, व्यक्ति के निर्माण करने वाली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पुनर्स्थापना की गई है। इसमें पहले तो बाल्यवस्था शिक्षा एवं देखभाल, शिक्षण का माध्यम व्यक्ति की स्वभाषा, शिक्षण की शुरुवाती स्तर पर विषय वस्तु को उसके स्थानीय परिवेश से जोड़कर आगे बढ़ने के लिए निर्देशित किया गया है। व्यक्ति के अंदर अंतर्निहित कला-कौशल को निखारने के लिए बहुविषयक, बहुआयामी और हर स्तर पर विषय चयन की स्वतंत्रता दी गई है। शिक्षण को आनन्ददायी और रुचिकर प्रविधि से प्रदान करने, प्रार्थना सभा, बाल सभा के माध्यम

से सच्चरित्र, ईमानदार, कर्मठ, कर्तव्यनिष्ठ और देशभक्त नागरिक बनाने का प्रावधान किया गया है। यही देश के सर्वांगीण विकास के लिए समर्थ और शक्तिशाली कुंजी है।

यह स्व अर्थात् अपनी भारतीयता के आधार पर करोड़ों की जन भावनाओं के अनुरूप तैयार की गई शिक्षा व्यवस्था है। इसे किसी शोध, अध्ययन की आवश्यकता नहीं है। इसी से प्राचीनकाल में हमारा भारत जगतगुरु, सोने की चिड़िया, आर्थिक रूप से सम्पन्न, विश्व की अर्थव्यवस्था में 33 प्रतिशत का योगदान देने वाला देश रहा है। इसी से ज्ञान विज्ञान, वैदिक गणित, वेद, उपनिषद और शास्त्र सहित हर क्षेत्र में अतुलनीय और विपुल साहित्य उपलब्ध करवाकर अध्ययन का केंद्र रहा है। इसी से मानव जीवन को स्वस्थ, सुखी-निरोगी बनाने के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति, योग, प्राणायाम, सुयोग्य संस्कारित नागरिक दिए हैं। दुनिया में सबसे महान भारतीय संस्कृति जैसा अनुपम उपहार दिया है। इसने खगोल और भूगोल को समझने के लिए साहित्य और दर्शन दिए हैं। दुनिया को धरती का आकार प्रकार बताया। अधूरी गणना को शून्य देकर गणना पद्धति को पूर्णता दी, दशमलव देकर अंतरिक्ष, ग्रह, नक्षत्र को समझने का मार्ग प्रशस्त किया है इसलिए यह प्रमाणित है कि इससे भारत जग सिर मौर रहा है और रहेगा, अब इसमें तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिए। यह स्व शिक्षा नीति 2020 भारत को समुन्नत राष्ट्र बनाने की पूर्ण क्षमता, समर्थता और संभावना रखती है और इसका आधार यह है।

बाल्यावस्था शिक्षा एवं देखभाल यह एनईपी 2020 का एक क्रांतिकारी प्रावधान है। देश मे पहली बार 3 से 6 वर्ष के बच्चों की शिक्षा और देखभाल की व्यवस्था की गई है। यह सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूह के करोड़ो बच्चों की समुचित देखभाल, संतुलित पोषण आहार के साथ नाश्ते, खेल खेल में शिक्षा और संस्कार देने का बड़ा कार्य करने का मार्गदर्शन करती है जिन्हें यह सुविधा अब तक अप्राप्त थी। विज्ञान ने यह सिद्ध करके भी बताया है कि इस उम्र में ही बच्चों का 85 प्रतिशत से अधिक मस्तिष्क विकसित हो जाता है इसलिए यह प्रावधान वंचित समूह के ऐसे करोड़ो बच्चों के सर्वांगीण विकास के साथ देश की उन्नति का भी आधार बनेगा।

नई शिक्षा नीति 2020 प्रारम्भिक शिक्षा को स्थानीय भाषा अर्थात् स्व भाषा में देने का प्रावधान करती है और हम जानते हैं कि ''निज भाषा उन्नति अहे'' किसी भी व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उसे उसकी

बाल्यावस्था में जिन न्यूरॉन का उपयोग नहीं हुआ वे नष्ट हो जाते हैं। बेगले 1996 विद्यालय प्रवेश के पूर्व प्रारम्भिक अधिगम में संलग्नता से बच्चो की तत्परता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सैमनस 2010 उच्च शिक्षा में बहुविषयक, बहुआयामी, कला और कौशल की शिक्षा का प्रावधान भी इस नीति का महत्त्वपूर्ण अंग है। हर विषय को पढ़ने की स्वतंत्रता, रुचि के कौशल को सीखने का प्रावधान, विषय को समय की उपलब्धता अनुसार पढ़ने पर प्रमाण पत्र, डिप्लोमा, डिग्री देने का प्रावधान। क्रेडिट का प्रावधान देश को भविष्य में समग्र विकसित नागरिक देने की दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण है।

स्थानीय अर्थात् स्व भाषा में दिया गया ज्ञान-विज्ञान शीघ्रता, सहजता और समग्रता से समझ मे आता है, इससे उसका स्वाभिमान जागृत होता है, उसे विषय वस्तु को समझने में रुचि पैदा होती है, अवधारणाएँ स्पष्ट होती हैं। वह स्वभाषा में उपलब्ध उसके पूर्वजों के ज्ञान-विज्ञान से जुड़ाव अनुभव करता है। उसके आस-पास परिवेश में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान से जुड़ाव होता है अर्थात् उसका सर्वांगीण विकास होता है और उसी से उसकी उन्नति होती है। एक शोध में यह सिद्ध हुआ है कि मातृभाषा में शिक्षण से 18 प्रतिशत साक्षरता दर में वृद्धि एवं 20 प्रतिशत स्नातक तक अध्ययन करने वालो की वृद्धि संभव होगी। ऐसा ज्ञानवान नागरिक ही समाज और देश की उन्नति का आधार बनेगा।

बच्चों का मस्तिष्क वयस्क व्यक्ति के मस्तिष्क से अधिक क्रियाशील और लचीला होता है। छात्रों के जीवन के पहले 6 वर्ष उन्हें प्रतिभासम्पन्न बनाने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। गोपनिक 1999 शुरुवाती दौर में मस्तिष्क का विकास जीवनपर्यंत सीखने सम्बंधित व्यवहार एवं स्वास्थ्य की नींव होता है। मैक-केन-और मस्टर्ड 2006 एक नवजात शिशु का मस्तिष्क 10 शंख न्यूरॉन से बना होता है। बाल्यावस्था में जिन न्यूरॉन का उपयोग नहीं हुआ वे नष्ट हो जाते हैं। बेगले 1996 विद्यालय प्रवेश के पूर्व प्रारम्भिक अधिगम में संलग्नता से बच्चों की तत्परता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सैमनस 2010 उच्च शिक्षा में बहुविषयक, बहुआयामी, कला और कौशल की शिक्षा का प्रावधान भी इस नीति का महत्त्वपूर्ण अंग है। हर विषय को पढ़ने की स्वतंत्रता, रुचि के कौशल को सीखने का प्रावधान, विषय को समय की उपलब्धता अनुसार पढ़ने पर प्रमाण पत्र, डिप्लोमा, डिग्री देने का प्रावधान। क्रेडिट का प्रावधान देश को भविष्य में समग्र विकसित नागरिक देने की दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण है। ❑

शैक्षिक मंथन (मासिक)
प्रकाशन तिथि : 1 जून 2024
प्रेषण दिनांक : 7 जून 2024, सी.एस.ओ. गाँधीनगर, जयपुर
पंजीयन क्र. : आर.एन.आई. राजबिल/2008/26080
डाक पंजीयन क्र. : आई.आर./जयपुर सिटी/434/2024-26

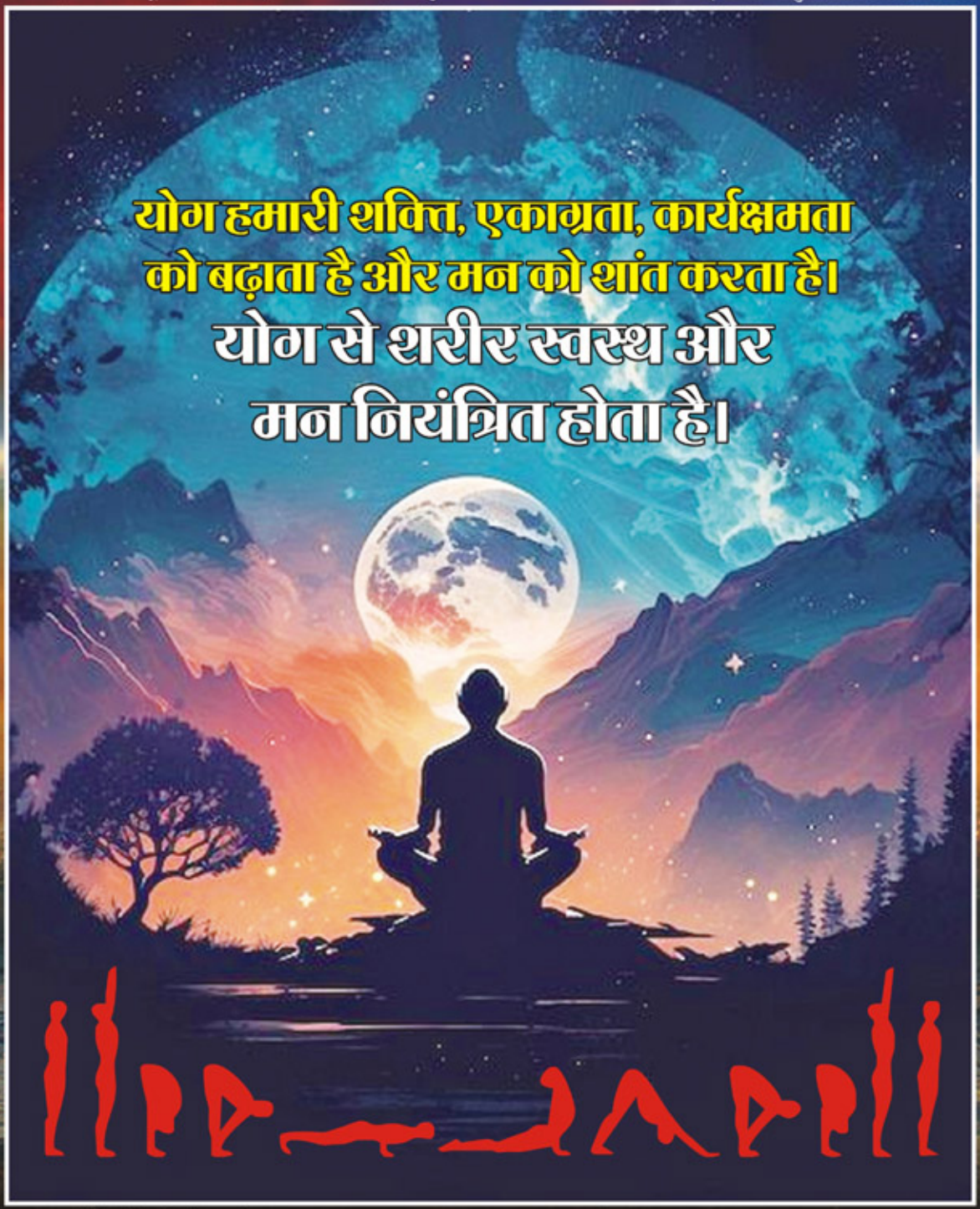

कृपया अवितरित होने पर लौटावें :
प्रकाशकीय कार्यालय
शैक्षिक मंथन
82, पटेल कॉलोनी,
सरदार पटेल मार्ग, जयपुर - 302 001

प्रकाशक, मुद्रक - महेन्द्र कपूर, स्वत्वाधिकारी
शैक्षिक मंथन संस्थान द्वारा प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस,
प्लॉट नं. 12, रामनगर, सोडाला, जयपुर से मुद्रित।
सम्पादक - डॉ. शिवशरण कौशिक